Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(C)-779
बिना डाक में डालने
इसेंस सं. U-89

भारत के सांस्कृतिक केंद्र

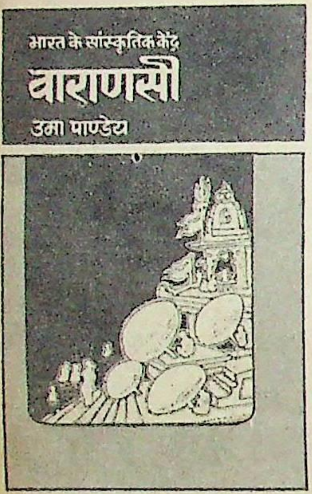

मूल्य : 38.00

मूल्य : 50.00

संपादक
कृष्णदत्त वाजपेयी

भारतीय संस्कृति सामंती संस्कृति का पर्याय नहीं है न इसके विकास का पूर्ण श्रेय किसी एक काल और स्थान को दिया जा सकता है. यह एक विकासशील परंपरा का अंग रही है, जिसका आंतरिक चरित्र समाहार-मूलक है. विभिन्न कालों तथा स्थानों में इसका विकास हुआ है. इसके विकास में विभिन्न केंद्रों के आर्थिक राजनीतिक उत्थान-पतन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. इन केंद्रों के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के बाद भारतीय संस्कृति के विकास को समझने में काफी मदद मिलती है.

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक केंद्रों पर इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा अन्य ज्ञानपिपासु जनों को भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की सम्यक जानकारी हो सके और वे उन कारणों को समझ सकें जिन्होंने समय-समय पर भारतीय इतिहास को प्रभावित किया है. इन पुस्तकों को जटिल या अति विस्तृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है. पादटिप्पणियों के रूप में संदर्भ एवं संकेत इसलिए दिए गए हैं कि संबद्ध विषयों में विशेष अन्वेषण करने वाले पाठकों को उनसे सहायता मिल सके. पुरातत्व, साहित्य एवं अनुश्रुति विषयक सामग्री का यथोचित उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है. ऐतिहासिक विवरण क्रमबद्ध रूप से दिए गए हैं.

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तकों में अजंता, खजुराहो, वाराणसी और मथुरा के सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में विकसित होने की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है.

मूल्य : 40.00

मूल्य : 50.00

M

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड

4 कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I
नई दिल्ली-110 028

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

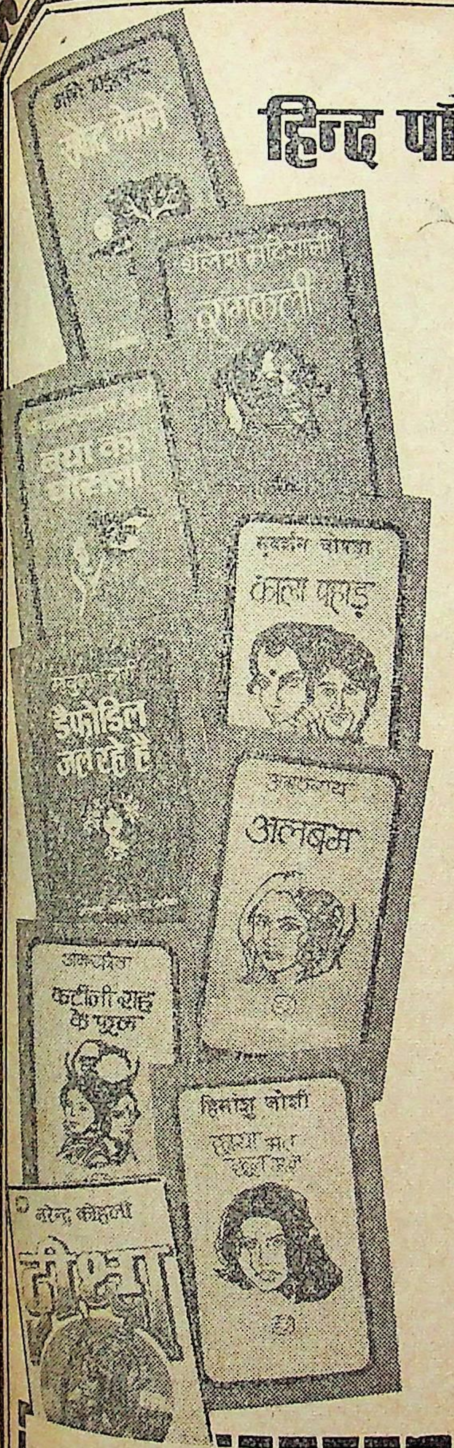

अपनी गौरवशाली परम्परा में

हिन्द पॉकेट बुक्स का एक और कदम

हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन

अब आपके लिए उपलब्ध हैं हिन्दी के वे श्रेष्ठ उपन्यास जिन्हें आप अवश्य पढ़ना चाहेंगे

महासागर	हिमांशु जोशी	४.००
कटीली राह के फूल	अमरकांत	४.००
मेरा अपना संसार	नरेन्द्र कोहली	३.००
पिता दर पिता	रमेश बक्षी	३.००
वापसी	बदीउज्जमा	४.००
अलबम	अमृत राय	४.००
यह भी नहीं	महीप सिंह	४.००
सफेद मेमने	मणि मधुकर	४.००
रामकली	शैलेश मटियानी	४.००
बेघर	ममता कालिया	४.००
दीक्षा	नरेन्द्र कोहली	४.००
अवसर	नरेन्द्र कोहली	४.००
निशांत	विजय तेंदुलकर	४.००
उसके हिस्से की धूप	मृदुला गर्ग	४.००
डेफोडिल जल रहे हैं	मृदुला गर्ग	५.००
एक खाली जगह	अमृता प्रीतम	३.००
काला पहाड़	सुदर्शन चोपड़ा	३.००
परिन्दे	निर्मल वर्मा	३.००
छाया मत छूना मन	हिमांशु जोशी	३.००
बया का घोंसला	लक्ष्मी नारायण लाल	४.००
सोमा	सत्यकाम विद्यालंकार	४.००

20 रुपये की पुस्तकों पर पोस्ट फ्री मगाएं

हिन्द पॉकेट बुक्स

जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

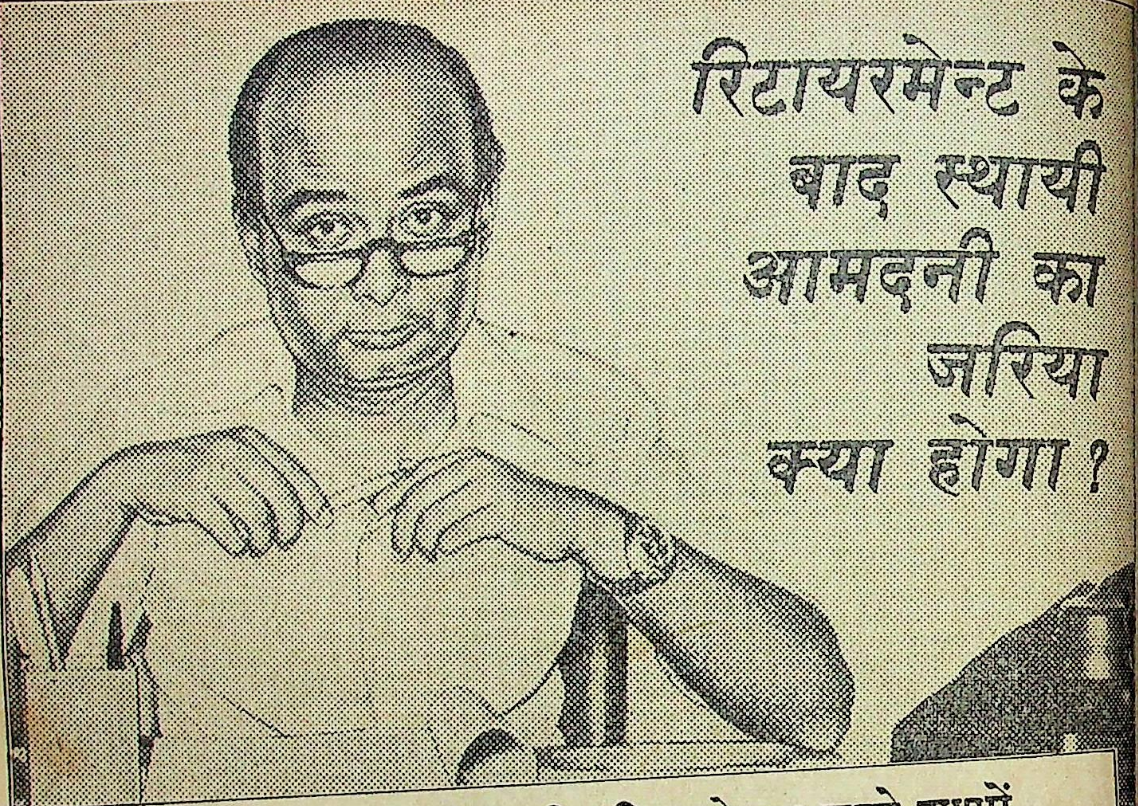

इलाहाबाद बैंक की पेंशन डिपाजिट योजना अपने आपमें इन समस्याओं का सरल और स्थायी समाधान है।

नियमित आमदनी के दृष्टिकोण से यह पेंशन डिपाजिट योजना आपके रिटायरमेन्ट के बाद वाले जीवन के लिए एक सुनिश्चित भरोसा है। इसके लिये आपको १० रुपये अथवा इसके गुणितों में सिर्फ ६३ से लेकर १२० माह तक योजना की अवधि के अनुसार पैसे जमा करने हैं। आपकी जमा की पूरी रकम ब्याज सहित ज्यों की त्यों तो रहेगी ही, इसका एक महत्वपूर्ण फायदा यह होगा कि आप प्रति माह अथवा हर तीसरे माह अपनी इच्छानुसार जबतक चाहें एक नियमित रकम ले सकते हैं। आप शीघ्र ही जमा की अवधि चुन लेवें ताकि रिटायरमेन्ट तक वह पूरी हो सके।

उदाहरणस्वरूप निम्न तालिका देखें।

जमा की अवधि (महीना)	मासिक जमा	मासिक आय	त्रैमासिक आय	खाते के समापन पर प्रतिदेय एक मुश्त राशि (बैंक के नियमों के अनुसार)
६३	रु. १००/-	रु. ६८.५० (६५वें माह से)	रु. २०७.५० (६७वें माह से)	रु. ८,२६१/-
८४	रु. १००/-	रु. १००.०० (८६वें माह से)	रु. ३०४.०० (८८वें माह से)	रु. १२,१५७/-

इस योजना के अन्तर्गत आप अपने प्रियजन के साथ भी खाते खोल सकते हैं।

विस्तृत जानकारी के लिये हमारी किसी भी निकटतम शाखा में पधारें।

इलाहाबाद बैंक
आपका अपना बैंक
(भारत सरकार का एक प्रतिष्ठान)

ULKA-AB-6 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपावली विशेषांक

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 272; 1 से 15 नवंबर, 1980

कहानियां

12. कमलिनी (मराठी) : बालकृष्ण वी. प्रभुदेसाई
20. सपनों की रोटी : राही मासूम रजा
27. ऊँ श्री ह्रीं : राकेश वत्स
30. भरती : मेरा पहला अनुभव : रवींद्रनाथ त्यागी
36. तम तोम का नारा उर्फ भीड़ का सत्य : उमाकांत मालवीय
47. होंठों के नीले फूल : प्रियंवद
50. सुलो और उसकी नदी : अक्षय उपाध्याय
56. फांसी : मधुकर गंगाधर
62. कुर्सी महाठगिनी हम जानी : विनोद शंकर शुक्ल
64. आटा : हरभगवान चावला

विशेष आकर्षण

23. खुदा सही सलामत है (धारावाही उपन्यास) : रवींद्र कालिया
34. अवध के चमन का दीदावर (अनजानी इतिहास कथाएं) : बाला दुबे
41. कुरु-कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता : अजित कुमार
52. किस्सा कोताह . . . तो यह है—गॉडफादर : द्रोणवीर कोहली

अन्य आकर्षण

8. पाठकों का पन्ना
11. जरिया-नजरिया
38. तस्वीर बोलती है
55. आपबीती
66. पखवारे की पुस्तकें
68. पढ़ते-पढ़ते

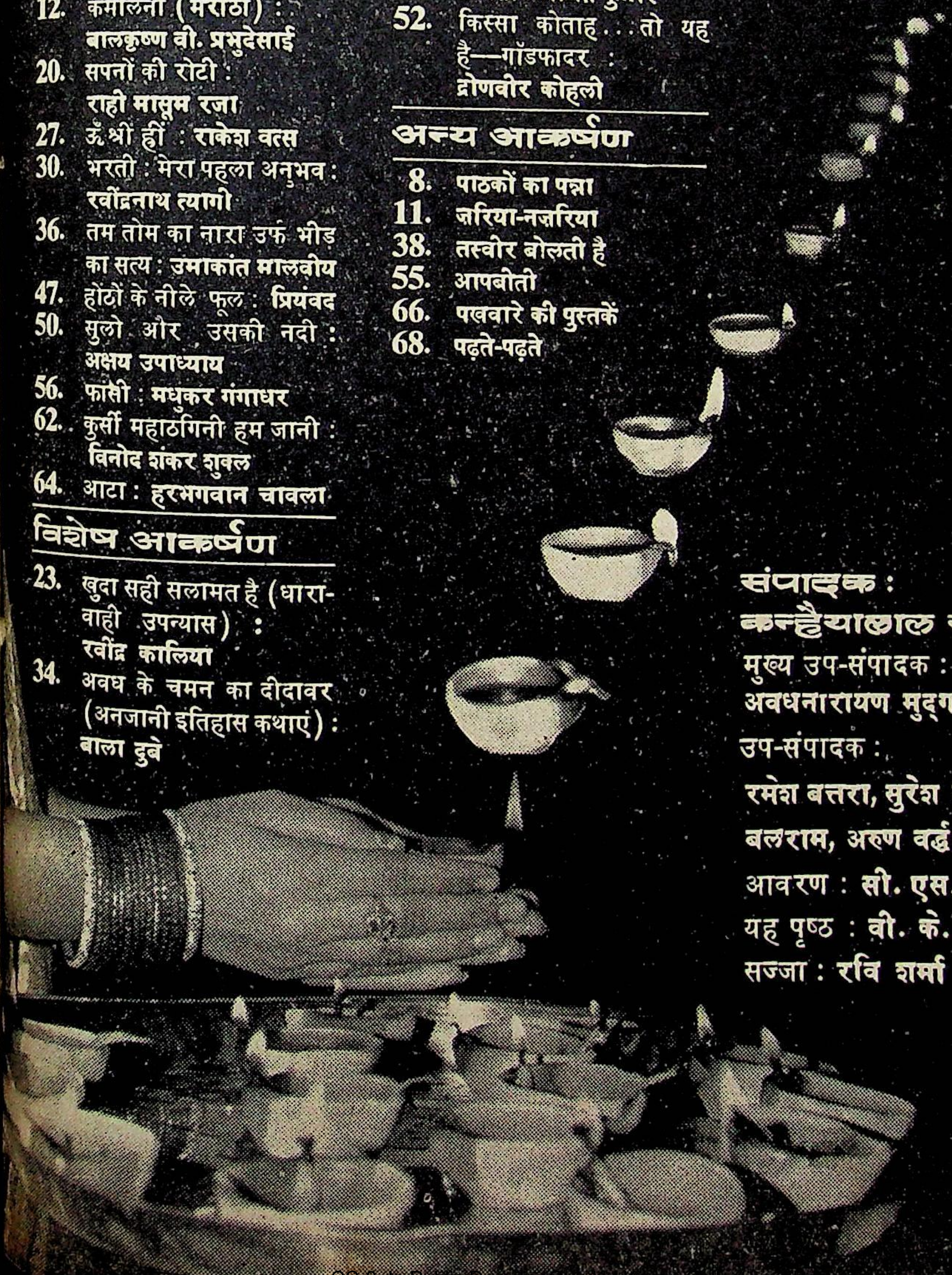

संपादक : कन्हैयालाल नंदन

मुख्य उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक : रमेश बतरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन

आवरण : सी. एस. सावंत

यह पृष्ठ : वी. के. जैन

सज्जा : रवि शर्मा

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनाब फिराक साहब को एक शिकायती सलाम

सारिका के 268 वें अंक में जनाब फिराक साहब के हिंदी के प्रति उद्गार पढ़े. फिर अंक 270 में श्री के. पी. सक्सेना का इन उद्गारों के प्रति आक्रोश पढ़ा, मजा आया. वैसे श्री सक्सेना की दुआ कि दूसरा फिराक कभी भी पैदा न हो, पर तो मैं भी तथास्तु कह सकता हूं. ये सच है कि दूसरा फिराक पैदा नहीं होगा. मेरे पिता जी भी आदत से ऐसे ही थे—आधे मिर्ची, आधे नीम. चिड़ियों को, कुत्तों को, मक्खी-मच्छरों तक को गालियां बका करते थे. क्या किया जाये, आदमी आदत से लाचार है. चमार, मोची, माली जैसे स्तर के सभी लोग बहुत गालियां बकते हैं. इनके आसपास का कोई व्यक्ति यदि वैसी ही गालियां नहीं बकता

पाठकों का पन्ना

तो ही आश्चर्य होता. हिंदी को हो या हिंदी वालों को, ये बाबाई गालियां दुआ ही हैं.

मुझे तो अब फिराक साहब पर केवल दया आती है. एक ममता-सी उमड़ती है. कितना तोड़ दिया है रोग और बुढ़ापे ने! अभी पिछले दिनों श्री बच्चनजी से मिलना हुआ था. आंखों में कैटरैक्ट बढ़ रहा है. तब भी मन में वैसी ही ममता की हिलोर उठी थी. पिताजी के प्रति भी यही ममता भाव रहा अंत तक. लगता है, जैसे ये सब बालक हो गये हैं और हम बूढ़े. इन गालियों का उत्तर केवल स्नेहभरी मुस्कराहट ही है. ये बात स्व. पंतजी भी जानते थे. फिराक साहब की पंतजी के प्रति श्रद्धांजलि का वाक्य याद है—'मैं जिंदगी भर तुम्हें गालियां देता रहा और तुम सिर्फ मुस्कराते रहे.' एक बात सुनी थी, कभी किसी व्यक्ति ने नेहरूजी के पांव छुए तो उन्होंने कहा था, "आदमी होकर आदमी के पांव छूते शर्म नहीं आती?" बात अपनी जगह जवाहरी थी. उसी व्यक्ति ने जब रवींद्रनाथ टैगोर के पांव छुए तो उन्होंने आशीर्वाद दे दिया. टिप्पणी थी कि नेहरूजी आशीर्वाद देने की ऊंचाई तक शायद नहीं पहुंच पाये थे. कौन क्या दे रहा है, ये उसकी ऊंचाइयों की ही उपलब्धि है.

जब तक जनाब जिगर साहब रहे, एक मुहावरा उर्दू अदीबों में चल निकला था, "जिगर जिगर है, दिगर दिगर है." जिगर साहब अंग्रेजी नहीं जानते थे, पता नहीं इतने महान कैसे हो सके. गजल का अर्थ यदि माशूक से गुफ्तगू ही है तो निश्चित ही जिगर और भी बड़े हैं. जिगर की शायरी प्रेम की शायरी है, प्रेम की पीड़ा की शायरी है, प्रसाद का मूल भी यही है. फिराक साहब की शायरी ज्ञान की शायरी है, तर्क और चमत्कार की शायरी है. बिहारी को पढ़ते समय भी जगह-जगह चकित रह जाना पड़ता है. कहते हैं, चमत्कार की शायरी दूसरे नंबर की होती है. ज्ञान ने हमेशा प्रेम और भक्ति को गालियां दी ही हैं. लोग बेकार बुरा मानते हैं.

फिराक साहब तुलसी और सूर को हिंदी का कवि नहीं मानते. उनके लिए अवधी और ब्रज हिंदी नहीं हैं. उनकी गालियों का लक्ष्य केवल खड़ी बोली और उससे संबंधित रचनाकार हैं, जो लगभग सारे समकालीन हैं. किसी भी समकालीन को अपने से श्रेष्ठ मानना फिराक जैसे व्यक्ति के लिए संभव नहीं हो सकता. पंत और निराला में ही सारी उम्र इसी भावना से एक मनोवैज्ञानिक तनाव रहा है. फिराक साहब का अहंकार ज्ञान का अहंकार है, कवि का नहीं.

शंकर और दयानंद जिस रसमयता से महरूम हुए थे, उससे हर ज्ञानी महरूम होगा ही. फिराक भी काफी महरूम हुए हैं. ये गालियां ही इसका प्रमाण हैं. पत्नी से सहवास जिसके लिए खुदकशी की सी भावना रही हो और इसी भावक्षण में गर्भ में आये बेटे ने आत्महत्या की हो. मुसलमान जिसे इसलिए महान नहीं मानें कि वो हिंदू शायर है और हिंदू इसलिए महान नहीं कहें कि वह उर्दू शायर है. मन के हर कोने में सुलगती ऐसी दाहक स्थितियों में जीकर कौन, कैसे और कितनी रसमयता बचा पायेगा. गनीमत है कि ऐसा व्यक्ति गालियां ही देता है.

ये सच है कि हिंदी अर्थात् खड़ी बोली के हिंदी जगत और डर्टियेस्ट लि[पि] ने ही फिराक साहब को पुरस्कार [...] पुस्तकों की बिक्री से पर्याप्त धन दिया किंतु यह सब उनकी मान्यताओं को ब[दलने] के लिए रिश्वत तो नहीं थी. फिर [...] को लाखों रुपये एक बोरा आलू के बरा[बर] नहीं होते. ये मान लेने में क्या हर्ज है [कि] फिराक साहब की सारी महानता अंग्रेजी [की] देन है. श्री गंगानाथ झा के अनुसार [...] फिराक साहब ने स्वयं भी माना है कि [...] ने पिछले तीन-चार सौ वर्षों में स्व[यं] [...] और संसार को कुछ नहीं दिया, उससे [...] दिया होगा. उस समय कितनी [...] इस देश में थी?

फल के पकने की शर्त उसका [...] होता जाना है. अगर वह मीठा नहीं [...] रहा है तो समझो, सड़ रहा है. अंत [...] डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार जबान [...] बात भाषाविदों के लिए छोड़कर मैं [...] अस्तंगत भाषा और विधा के महान [...] को अपना आदाब अर्ज करता हूं.

▣ **भारत भूषण, मेरठ**

यूं कोई बेवफा नहीं होता

सारिका(अंक-268) मेरे हाथ में आ[या] साथ में 50 पैसे का अतिरिक्त भार ला[या]

'कुछ तो मजबूरियां रही होंगी,
यूं कोई बेवफा नहीं होता.'

इस बार, विशेषकर आपका [...] **नजरिया** गजब का रहा. क्या [...] जानवर ही कसूरवार हैं? या इन [...] जानवरों के पीछे हम अक्लमंद इं[सान] जानवर हैं.

▣ **शकील बलोचकी, समस्तीपुर, बिहा[र]**

दूसरा बेकन

फिराक साहब को मैं जानता हूं [...] उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को [...] परखा है. साहित्यकार के रूप में फि[राक] 'जीनियस' हैं, किंतु व्यक्ति के रूप में [...] निहायत घटिया किस्म के इगो[...] भाई के. पी. सक्सेनाजी का रोष स्वाभा[विक] है, लेकिन हम बेकन के व्यक्तिगत जीव[न] [की] हरकतों को देखकर यह तो नहीं कह [...] कि 'भगवान करे कोई दूसरा बेकन न [...] हो'. हां, हम ईश्वर से प्रार्थना कर [...] हैं कि गंदी आदतों वाला हठी, दं[...] दूसरा बेकन या फिराक न पैदा हो.

▣ **प्रहलाद राजवेदी 'राकेश,' नयी दि[ल्ली]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिहास-उपहास की बू

सारिका' के संपादक के रूप में आपने केवल कमलेश्वरजी के अभाव की पूर्ति है अपितु अपना मौलिक योगदान जरिया-नजरिया जैसे स्तंभ तथा नियों के चयन में विशिष्ट सूझबूझ का परिचय देकर आपने पत्रिका की गरिमा में चांद लगा दिये हैं. अंक : 269 में र खां कहानी बड़ी मार्मिक है. कहीं में गहराई से स्पर्श कर जाती है. नीकरण-बुनावट एक प्रसंग को छोड़ प्रशंसनीय है.

वह प्रसंग जिसमें 'साईं' और 'वड़ी' जैसे क शब्दों का लेखक ने प्रयोग किया है. समुदाय में 'साईं' शब्द 'श्रीमान,' 'जनाब' के रूप में लिया जाता है. का अर्थ 'ईश्वर' के रूप में संत कवियों नी काव्य रचनाओं, भक्ति गीतों में है.

ड़ी' कोई शब्द ही नहीं, वस्तुतः है, जिसका अर्थ है 'फिर' या 'तक'. प्रकार इसमें परिहास उपहास की बू है.

■ हलराम आजाद, बंबई

ना यह चाहिए कि . . .

ता है, सितंबर द्वितीय अंक में आपने राष्ट्रवादिता' के लांछन से बचने के में हिंदुओं की त्रुटि 'अछूत भाव' को दोषी ठहरा दिया. अगर आम हिंदू स्लिम वैमनस्य के कारणों को पढ़ा तो एक हद तक इस अलगाव को जा सकता है. सांप्रदायिक दंगों में उनके प्रति सहानुभूति व जो नहीं न्हीं को दोष देना उचित तो नहीं. यह चाहिए कि यह चिंगारी फूंकी ? आज एक हिंदू पीड़ित है मुसल- की 'कट्टर' धार्मिक भावना व हिंदू के प्रति उनके घृणित विचारों से, जब हिंदुओं की धार्मिक सहिष्णुता को कोई नकार सकता. क्यों नहीं हिंदू की तरह मुसलमान नेता मुसलमानों में हिंदुओं के साथ प्रेम-भाव बढ़ाने को रित करते, बजाय अपने लिए अधिक मांगने के? यह काम तो हिंदू बढ़-चढ़कर कर रहे हैं, भले राज- लाभ के लिए ही सही.

■ जैन, चिकमंगलूर

एक गैरजिम्मेदार व्यक्ति का नाम है--फिराक

सितंबर 80 'सारिका' में प्रकाशित गोरखपुर के एक उपेक्षित अंचल में जन्मे (सिकरी गंज कस्बे के पास का एक छोटा-सा गांव) श्री रघुपति सहाय 'फिराक' का साक्षात्कार पढ़ा. फिराक की दुनिया से परिचित होने के कारण इस साक्षात्कार के लिए जो आशंकाएं उठ रही थीं, वह पढ़कर सही पाया. वह यह कि फिराक एक बेहतरीन और ईमानदार शायर के साथ-साथ एक गैरजिम्मेदार व्यक्ति का नाम है. फिराक का पूरा जीवन और लेखन इस तरह के विरोध और विसंगति से अंतर्ग्रस्त रहा है, जैसे इसी साक्षात्कार में उनका यह कहना कि 'मैं एक अच्छा शायर नहीं, एक अच्छा गृहस्थ होना चाहता हूं, था.' अभी इसी तरह का वक्तव्य एक अन्य पत्रिका में देते हुए कहा कि "मैंने आई. सी. एस. नौकरी इसलिए ठुकरा दी, क्योंकि मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि मेरी बीवी को यह सुख मिले कि वह अपने को एक आई. सी. एस. की बीवी कह सके." क्योंकि उन्हीं के अनुसार उनकी जवानी में एक निहायत बदसूरत और अनपढ़ औरत से उनके पिता ने जबरिया शादी कर दी थी. लिहाजा उन्होंने जीवन भर पत्नी से इसका बदला लिया.

अपने व्यक्तित्व की विरोधी स्थितियों की तरह फिराक का लेखन साहित्य जगत की हलचल में विरोध और टकराव की स्थितियों को बरकरार रखे है. अपने इसी साक्षात्कार में उनका एक जगह यह कहना कि, 'मैं उस आदमी को बुरा नहीं कहूंगा जो हत्यारा है, चोर है. . ." फिराक की दृष्टि में अपराधी वह है जो इस विराट आकाश को देखकर 'अनयूजली थ्रिल्ड फील' नहीं करता, जो गंगा की मौज को देखकर उसके साथ थिरक नहीं उठता. ऐसे साहित्यकार की साहित्यिक उपयोगिता अशोक वाजपेयी के शब्दों में कहा जाये तो 'जीभ और जांघ का चालू भूगोल' है. जिससे प्रेमचंद, इकबाल या निराला की तरह अपेक्षा नहीं की जा सकती.

■ अरविंदकुमार त्रिपाठी, गोरखपुर

नाम बताया तो थप्पड़ खाया

'जानवर और जानवर--दो' पढ़ा. वास्तव में आपने एक जानदार विषय उठाया है. उसी के तहत मैं कह सकता हूं हम हिंदुस्तानी मुसलमानों की स्थिति धोबी के कुत्ते के समान है, जो घर का है न घाट का. जो धार्मिक फिरकापरस्तों के दोनों पाटों के बीच पिसता है. एक ओर उसका अपना संप्रदाय उसे हेय दृष्टि से देखता है तथा काफिर की उपाधि से विभूषित करता है. दूसरी ओर आपके पड़ोसी गांव, जिसका आपने जिक्र किया है, जैसी स्थिति होती है कि कितना भी आत्मीय बनने पर 'अछूत' बना रह जाता है. कुछ इन्हीं आपबीतियों के बाद अब मेरा साहस चुक गया है कि किसी 'हिंदू' का निमंत्रण स्वीकारूं. दूसरी ओर कितना भी वैचारिक एवं सहृदय की आस्था से भारतीय हूं, लेकिन सांप्रदायिक दंगों आदि के समय कुछ निकट मित्रों की आंखों में भी घृणा झलकती है. सिर्फ नाम से मैं हमेशा मुसलमान ही घोषित हुआ, हिंदुस्तानी नहीं.

एक बार बचपन में दुर्भाग्य से एक दंगाग्रस्त क्षेत्र में फंस गया. एक सज्जन ने जानबूझ कर मेरी साइकिल में टक्कर मार दी. बाद में नाम पूछा और मेरे 'साबिर हुसेन' कहते ही एक थप्पड़ गाल पर पड़ा. वह चोट सीधी दिल में उतर गयी, है, जो अभी तक नहीं भुला सका हूं. कितने ही प्रयत्नों के बावजूद मैं हिंदुस्तानी नहीं बन सका, क्या कभी बन सकूंगा, इसका मुझ जैसे लोगों को इंतजार रहेगा, जब हम बेधड़क किसी का निमंत्रण स्वीकार कर सम्मान से हंसते-खिलखिलाते दोस्तों का कौर छीनकर खा सकेंगे या हिंदू मोहल्ले में पंडितजी का मकान किराये पर लेने में मेरा नाम बाधक नहीं बनेगा.

■ साबिर हुसेन, पलियाकलां (खीरी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरहद पार से

'सारिका' सितंबर-2 अंक पढ़ा. मुद्राराक्षस के साथ विनयदास और वीर राजा की बातचीत काफी रोचक लगी तथा मुद्राराक्षस के बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व को जानने का भी मौका मिला, पर जिस चीज की ओर मैं सबसे ज्यादा आकृष्ट हुआ, वह थी ऋता शुक्ल की कहानी 'बेनकाब'. सचमुच लेखिका ने इस कहानी के द्वारा परिवार की परिधि में फैली विकृतियों का बड़ा ही सशक्त चित्रण किया है. यह कितना बड़ा व्यंग्य है कि एक ही मां की कोख से जन्मा भाई अपनी बहन के प्रति ऐसी उपेक्षापूर्ण गलत दृष्टि रखता है? एक भाई के दूसरे भाई के साथ इस तरह के व्यवहार की बात तो समझ में आ सकती है, लेकिन एक बहन, जो पारिवारिक स्तर पर किसी भी तरह उसकी प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकती, के साथ ऐसा उपेक्षापूर्ण व्यवहार बिल्कुल अमानवीय है. और इस उपेक्षापूर्ण दृष्टि का शिकार अक्सर अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी बहनें ही होती हैं. अतः आज जरूरत इस बात की है कि बहनें ज्यादा से ज्यादा अपने आपको शिक्षित बनाने की कोशिश करें. तभी वे इस तरह के उपेक्षापूर्ण व्यवहार का सामना करने में समर्थ हो सकती हैं.

लेखिका ऋता शुक्ल को ऐसी सशक्त तथा साथ ही रोचक कहानी लिखने के लिए मेरी ओर से बधाई.

▣ परदेशी, काठमांडू (नेपाल)

दिल की भड़ास

श्री गोपालदास ने मुझे निराश किया. मुद्राराक्षस के लेखन से ज्यादा पुराना परिचय नहीं है. दो वर्ष आकाशवाणी में नौकरी कर, घुटन से बेहाल हो, हाल ही में त्यागपत्र दिया है. आकाशवाणी में रहते, पहले भी मुद्रा के कुछ रेडियो नाटक सुने थे, जो बेहद प्रभावशाली थे. दिल्ली आकाशवाणी के रंग-ढंग, अतीत में खोयी मुद्रा की तरंग मैंने भी तलाशनी चाही थी और छटपटा कर रह गया. 'भगोड़ा' पर प्रतिक्रिया पढ़ते ही लगा—आलोचक की कोई ग्रंथि उसे सच कहने से रोक रही है. वह उसी व्यवस्था की खिसियाई बिल्ली तो नहीं? एकाएक मैं किसी को दोष देना नहीं चाहता था. भगोड़ा खरीदा और दो बार पढ़ डाला. लगा, आलोचक चालाक आदमी है, एक तीर से दो शिकार करना चाहता है. आलोचना का तरीका बनाता है— उपन्यास के उन स्थलों को, जिन्हें खुद लेखक ने ही स्पष्ट कर देना चाहा है. उसके दिल को तसल्ली होती है उपन्यास के ये शब्द पाठकों के सामने रखकर, 'बेतरतीब हो गया बिखर गया है.'

प्रतिक्रिया का अधिकार दिल की भड़ास निकालने के लिए आजकल प्रयोग हो रहा है. इसी जंजीर में एक कड़ी जोड़ी है—श्री गोपालदास ने, लेकिन 'कटे हुए हाथ सड़ते नहीं, फिर से उग आते हैं.' ये अलग बात है, वे हाथ अपने दुश्मनों की गिरेबान नहीं पकड़ते. राजी सेठ की प्रतिक्रिया ठीक-ठाक है.

विनयदास और वीर राजा ने साक्षात्कार में जो पकड़ और चुस्ती दिखायी है, उससे मुद्रा को पहचानने में सरलता आयी है.

▣ राजेश्वर, जयपुर (राज.)

आचार्य शुक्ल उवाच

मैं हिंदी का ज्ञाता नहीं हूं. मेरे पास न उपयुक्त शब्दकोष है और न मैंने भाषा-विज्ञान का अध्ययन किया है. इतना ही कह सकता हूं कि आप लोगों के पत्रों में 'दशहरा' शब्द का गलत प्रयोग होता है.

सन् 39-40 में जब मैं बी. ए. की कक्षा में पढ़ रहा था और आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल कक्षा को पढ़ा रहे थे—तब एक विद्यार्थी ने कहा, "दशहरे की छुट्टियों में. . . . ." आचार्य ने टोक दिया और कहा कि 'दशहरा' शब्द गलत है. यह 'दसराहा' है. इस दिन से दसों रास्ते खुल जाते हैं. "दशहरा जेष्ठ मास में होता है, जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं. उस दिन वर्षा ऋतु का आगमन शीघ्र मानकर यह माना जाता है कि दसों रास्ते हर लिये गये अर्थात् बंद हो गये."

आपकी कृपा होगी, यदि आप इस महान त्योहार के शुद्ध रूप को पाठकों, लेखकों और जनता तक पहुंचा दें.

▣ गोविंदनारायण सिंह, नयी दिल्ली

उपेक्षा से हिंसा तक

सुश्री चित्रा मुद्गल की कहानी 'मा[...] आगे बढ़ेगा अभी' एक प्रभावी रचना[...] एक ओर मेम साहब लड़के मोट्या[...] अडॉप्ट करने की सोचती हैं और वह[...] कभी-कभी उन्हें मम्मी कह देता है,[...] दूसरी ओर पति द्वारा उसका[...] अपमानित करके निकाला जाना[...] खड़ी हुई देखती रहती हैं. यह[...] मोट्या सहन नहीं कर पाता और वह[...] हो उठता है. बंबई के आंचलिक प[...] में बुनी हुई इस कथाकृति की हृदयस्प[...] और करुणा मन को भिगो जाती है.

▣ विनोद कौशिक, बिजनौर

बाजारू साहित्य और कला[त्मक] साहित्य

'सारिका' के अक्तूबर 80 अंक[...] कमलादास की चर्चित कृति मेरी क[...] पर रवींद्र कालिया का लेखकीय न[...] पढ़ा. 'मेरी कहानी' में नैतिक साहस[...] पर सेक्स का नितांत सतही चित्रण[...] गया है, जिसे कमलादास जैसी लेखिका[...] शब्दों के स्पर्श से अश्लीलता को छू[...] भी बखूबी कह सकती थीं. भले ही इ[...] लोग यह समझें कि इस कृति ने पर[...] रूढ़िवादी पाठकों एवं समीक्षकों के मु[...] भरपूर तमाचा मारा है, परंतु यदि [...] से अधिक सेक्स-खेल उजागर करने[...] शब्दों का प्रयोग और 'अनकही' बा[...] खुले आम कहना ही पैनी अभिव्यक्ति[...] परिचायक है तो मैं समझता हूं कि बा[...] साहित्य और कलात्मक साहित्य में[...] भेद नहीं है.

अंत में, दांपत्य संबंधों में हिंसा[...] जंगलीपन के अलावा और कुछ अनु[...] होने का जो आरोप कमलादास ने[...] है, वह निःसंदेह भ्रामक है. ज्यादा न[...] केवल इतना ही कहूंगा कि स्त्री और[...] के बीच मनःसमागम संभोग एक सेतु[...] अंतरंग तन्मयता के क्षणों में एक-दू[...] बाहर और भीतर से जोड़ता है. इसमें[...] संप्रेषण मात्र होता है, अभीष्ट नहीं. द[...] जो इस कला की साधना करते हैं[...] जानते हैं कि इस पृथ्वी पर स्व[र्ग][...] उतारा जा सकता है.

▣ विजयप्रकाश श्रीवास्तव, [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पिछले अंक में हमने भूगोल के छोटे होने और इतिहास के सिमट जाने की बात की थी. यह बात दुनिया के हालात देखकर और स्पष्ट हो जाती है. आज दुनिया के किसी भी हिस्से में किसी भी तरह की घटना-दुर्घटना या कोई वारदात हो जाती है तो उसका असर कमोबेश पूरी दुनिया पर पड़ता है. आज हम एक दूसरे से इतने जुड़े हैं या एक दूसरे पर

मानवीय मूल्यों के मसीहा—दो

इतने निर्भर हैं कि एक जगह की तकलीफें दूसरी जगह अपना रंग दिखाये बगैर नहीं रहतीं. इन हादसों का असर सिर्फ छोटी शक्तियों पर नहीं पड़ता, महाशक्तियों पर भी पड़ता है. इनसे कभी महाशक्तियों की चौधराहट खतरे में पड़ती है तो कभी उनकी अर्थ व्यवस्था—किस्सा कोताह यह कि अंतर्राष्ट्रीय मंडियों का संतुलन बिगड़ जाता है और छोटी-मोटी मंडियां आघात से ही लड़खड़ा जाती हैं. इन मंडियों की लड़खड़ाहट हर घर में महसूस की जाने लगती है. आज युद्ध इराक और ईरान में हो रहा है और उसके झटके हमें झेलने पड़ रहे हैं. कभी पेट्रोल की तथा दूसरे पेट्रोलियम पदार्थों की कमी है और दीगर चीजें दहशत से ही छुप गयी हैं और तकलीफों के बवंडर में घिर गया है पूरी दुनिया का कमजोर आम आदमी. आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को पेट्रोल की जरूरत भले ही न हो लेकिन मिट्टी के तेल की जरूरत तो पड़ती ही है. सामान्य जन, चाहे वह किसी भी देश का हो, एक सी तकलीफों के दौर से गुजरता है. उसके एहसास, उसकी लड़ाई, उसकी जरूरतें और उसके हालात कमोबेश एक जैसे और साझे के होते हैं. इन युद्धों और वारदातों का लाभ सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों को ही मिलता है, नुकसान उठाना तो सर्वसाधारण की नियति है.

नुकसान और तकलीफें झेलते जाने का सिलसिला आदमी की लाचारी और गिरावट का सिलसिला है, आम जिंदगी के लगातार सस्ते होते जाने का सिलसिला है. जिंदगी का और कीमतों का सीधा संबंध है—जब कीमतें बढ़ती हैं तो आम लोगों की जिंदगी सस्ती हो जाती है और जब जिंदगी सस्ती होती है तो अव्यवस्था और डंडे की व्यवस्था या डंडे की राजनीति फलने-फूलने लगती है. संवेदना, सहानुभूति, आपसी सहयोग और सद्भाव जैसी चीजें खोखली और बेमानी हो जाती हैं और हमें मानवीय मूल्यहीनता से दो-चार होना पड़ता है. आज हम ऐसी ही मूल्यहीनता के दौर से गुजर रहे हैं. हमें अनिश्चय और अनिर्णय की दिशाहीनता का शिकार होना पड़ रहा है. रास्ते या तो बंद हैं या अंधेरों में डूबे हुए. दीवाली के करोड़ों दीये भी इन अंधेरों को दूर कर पाने में असमर्थ हैं. आज के हालात देखकर यही लगता है कि अब दीवाली के दीये रोशनी नहीं देते—धुआं उगलते हैं और घुटन फैलाते हैं.

चीजों की कीमतें जिस तरह बढ़ी हैं और बढ़ती जा रही हैं उन्हें देखते हुए कोई भी मौसम त्योहार का मौसम नहीं लगता. इन हालात में हम त्योहार की रस्मअदायी भले ही कर लें लेकिन मना नहीं सकते.

आज जिंदगी की हर बात दो ही चीजें तय करती हैं—एक सियासत और दूसरे हालात. हालात को बनाने-बिगाड़ने का दारोमदार सियासत के ही जिम्मे है और सियासत हालात को बनाती कम है, बिगाड़ती ज्यादा है. इस तरह आप यह भी कह सकते हैं कि हम हालात के मारे कम और सियासत के मारे ज्यादा हैं. गम-खुशी, युद्ध-सुलह, तेजी-मंदी, रोशनी-अंधेरा, व्यवस्था-अव्यवस्था, सभी कुछ सियासती भ्रूभंग के मुंतजिर हैं. सियासत जादू है और सत्ता जादुई चिराग, जिनके सहारे क्रूर और खुदगर्ज अलादीन गरीब जनता की कीमत पर अपने हितों की हिफाजत कर रहे हैं. ऐसा नहीं कि सियासत यकबयक क्रूर और हत्यारी हो गयी है, यह तो उसकी पैदाइशी फितरत है. इतिहास गवाह है कि सियासत कभी पाक-साफ नहीं रही. इतिहास इस बात का भी गवाह है कि हर युग का सामान्य जन तकलीफों भरी गुमनामी जीता रहा है. सारी तरक्की, सारा ज्ञान-विज्ञान शक्तियों और शक्तिकेंद्रों को ही मुफीद रहा है, आम जिंदगी से कुछ खास सरोकार नहीं जोड़ पाया. यही वजह है कि सियासत जिंदगी के हर क्षेत्र पर जरूरत से ज्यादा हावी है और सामान्य जन उससे उतना ही कटा हुआ. ऊपरी तौर पर यह बात विरोधाभासी लग सकती है लेकिन है एक बहुत बड़ी हकीकत.

कुछ लोग इस हकीकत से कतराते हैं, भाग खड़े होते हैं और कुछ इसके रू-ब-रू हो जाते हैं, इससे जूझते हैं. हम हर जूझने वाले के साथ हैं. जूझने से हौसला तो बढ़ता ही है, सही दिशा की पहचान भी होती है. मैं सही दिशा की पहचान कराने वाले इन जुझारू मसीहाओं को एक बार फिर नमन करता हूं.

▣

आदमी और हकीकत की सही दशा-दिशा की पहचान से जुड़ा 'सारिका' का यह विशेषांक इन्हीं मसीहाओं को समर्पित है. यह अंक महंगाई के मारे दीयों को रोशनी भले न दे सके लेकिन मेरा विश्वास है कि आज के हालात को रोशनी में अवश्य खड़ा कर देगा. बिगड़े हुए हालात के बावजूद यह अंक आपको थोड़ी-सी राहत, थोड़ा-सा सुकून और हालात से जूझने की थोड़ी-सी ताकत दे सके, इसी आशा और विश्वास के साथ मैं 'सारिका परिवार' की ओर से आप सबको दीपावली की शुभकामनाएं अर्पित कर रहा हूं.

कन्हैयालाल नंदन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

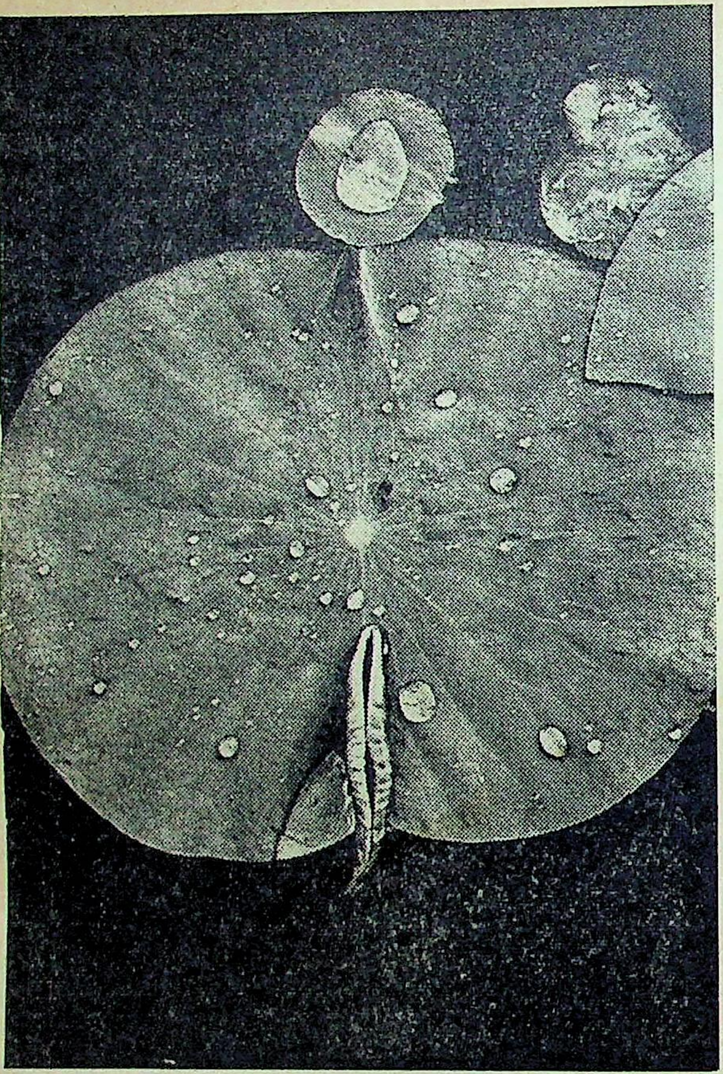

छाया : रघुराय

मराठी कहानी

बालकृष्ण वि. प्रभुदेसाई

बंदरगाह दिखने लगा. हमारी एस. टी. स्टैंड के पास वाले छोटे से ढलान से हौले से नीचे रेती में उतर गयी.

"आ गया बेटा केशव, तुम्हारा ससुराल!" आगे वाली सीट पर बैठे मेरे दादा मेरा कंधा कौतुक से थपथपाते हुए बोले तो इतनी देर तक चल रही औरतों की बकवास बंद हो गयी. सबकी नजरें खिड़की के बाहर मुड़ गयीं.

आक्षितिज असीम सागर उफन रहा था. बायीं ओर नारियल के पेड़ों की घनी पंक्तियां हिल-डुल रही थीं और सामने शुभ्र बालू का पट्टा लंबा ही लंबा फैल गया था और डेढ़-दो मील की यात्रा रेत में पैदल करनी थी.

हमारी बारात एस. टी. से उतरी. समुद्र की भिनभिनानेवाली हवा शरीर पर आ गयी. यात्रा की समस्त थकान कहीं गायब हो गयी. वैसे थकान जैसी चीज कोई थी भी नहीं. राजापुर में बस में बैठने के तुरंत बाद हमारे हंसी-मजाक में काफी उफान आया था. कितने ही वर्षों के बाद घर में पूरा खानदान जमा हो गया था. चचेरा भाई महादेव तो करीब करीब चार-पांच वर्षों के बाद मिल रहा था. आठ-दस दिन हमारी गपबाजी कुछ ऐसे उभार पर थी कि कुछ पूछा ही नहीं जाये. परमेश्वर ही जानता होगा कि हम इतना क्या बोल रहे थे. . .हमारी बे… वाली भाभी बहुत मुंहफट थी. वह बो… थी, "निगोड़ो, यह महादेव जब यहां था, … बिना लाठी-काठी के आपस में बात … होती थी. और अब क्या ऐसी गाड़ी … रही है? कम-से-कम कल ब्याह के अव… पर तो दूर रहना एक दूसरे से! … माधव? नहीं तो यह केशव उसका … लेकर कौर डालेगा तुम्हारे मुंह में…"

इस पर प्रचंड हंसी का विस्फोट-सा … गया और महादेव ने तुरंत एक तुक… में नाम भी गूंथा—"इमली के पेड़ … बैठा भौंर और महादेव के मुंह में. . .जले… का कौर."

फिर क्या था? पहले भी हंसने के लि… किसी कारण की आवश्यकता नहीं थी— और अब. . .हमारे हास्यविनोद में … और पिताजी भी शामिल हो गये. … वाली सीट पर बैठा सदा चाचा भी … में मुस्कराने लगा. तुरंत गंभीर चे… बनाकर उसने हुक्म दिया, "ये जो … अभी हीः हीः करके हंस रहे हैं उन्हें … भोजन की पांत में पांच-पांच श्लोक बो… होंगे. उसमें महादेव का नंबर सर्वप्रथ… देखें प्रोफेसर बनकर इसकी विद्वता कि… बढ़ गयी है!"

सदा चाचा के मुस्कराने का … लिए बहुत बड़ा अर्थ था. बबईवाली … उसे 'जगन्नियंता' 'सूत्रसंचालक' इत्या… कहा करती थी. सदा चाचा के हिसाब से … कोई बड़ा था न छोटा. कभी किसी … वह दादाजी को भी चार बातें सुनाने … बाज नहीं आता था, फिर हमारी … बिसात थी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा हो-हल्ला खूब बढ़ जाता तो सदा चाचा इस तरह डपट देता था, "महादेव, केशव, अब अगर आपका यह हुआं-हुआं नहीं रुकेगा तो सीधे कान के नीचे आवाज निकलेगी, हां!"

हमारे चेहरों पर जरा-सी मुर्दनी छा जाती थी तो सदा चाचा फिर जोर से कहता, "खीसें क्या निपोर रहे हो हीः हीः करके? इतने बड़े हो गये घोड़ों की तरह और यह सब तुम्हें सिखाना पड़ता है? केशो, अरे कल तुम्हारी शादी है. . .कम-से-कम आज तो मुझे गुस्सा न दिलाओ. . .और यह म्हादवा. . . इसे क्या प्रोफेसर बनेगा, कालिजवाला?"

इस पर दादाजी सदा चाचा पर गुस्सा होकर कहा करते, "अरे भाई, तुम जरा आज चार मीठे बोल बोलोगे तो क्या आसमान टूट आ जायेगा? चार दिन ये लड़के इकट्ठा हो गये हैं—चलेगा जरा हो हल्ला! तुम्हारी हिटलरशाही क्यों आठों पहर!

दादाजी हमारी ओर से बोलते तो हमारे हंसी-खेल में फिर जान आ जाता.

ऐसे ही चलता रहा था पूरी यात्रा के दौरान.

एस. टी. से हम नीचे उतरे ही थे कि सदा चाचा ने डपटकर हमसे कहा, "पराये गांव में आये हो. बिलावजह हीः हीः हीः हीः मत करो. और केशव, तुम्हें खासकर बताये देता हूं, बच्चों के साथ बैठकर हीः हीः करना अच्छा नहीं होता. हम लोगों के साथ बैठो. जरा अपनी शान के साथ रहो. यह मत भूलो कि तुम बाराती हैं."

इतने में सदा चाचा को किसी ने पुकारा, इसलिए हम उनकी डपट से बच गये.

बंदरगाह पर हमारे स्वागत के लिए साधले मामा आये थे. मुझे याद हो आया—महीने भर पहले लड़की को दिखाने भी साधले मामा आये थे, साधले मामा ने दादाजी, पिताजी और चाचा—सबको नम्रतापूर्वक झुककर नमस्कार किया. फिर मुझे भी किया. मैं एकदम झेंप गया और इसका भान नहीं रहा कि मुझे भी जवाब में नमस्कार करना चाहिए था. इतने में सदा चाचा ने आंखें तरेरकर संकेत किया और मैंने झट से नमस्कार कर दिया. पता नहीं यह सब साधले मामा के ध्यान में आया या नहीं. उन्होंने प्यार से मेरे कंधों को थपथपाते हुए कहा, "रहने दीजिए. . .यात्रा ठीक रही न?" साधले मामा ने सबकी कुशल-क्षेम पूछी.

"हां, हां. बहुत ठीक!" दादाजी ने गर्दन हिलायी. "स्पेशल बस थी, इसीलिए बड़े मजे में आ गये."

साधले मामा की पोशाक पुराने ढंग की थी. महादेव ने मेरे कान से लगकर पूछा, "कौन हैं ये?"

मैंने धीमी आवाज में बताया, "मामा. . .उसके. . ."

"बिलकुल न. चिं. केलकर जैसे लगते हैं—हैं न?" महादेव पुनः मेरे कान के पास फुसफुसाया.

बहुत मुश्किल से हम दोनों ने हंसी को रोका. साधले मामा ने कहा, "अब एक-डेढ़ घंटे में पहुंच जायेंगे. खाड़ी पर नावें तैयार हैं और अब ज्वार का समय है. पंद्रह-बीस मिनट की नाव की यात्रा है."

नाव की यात्रा की कल्पना से हमें बहुत ही खुशी हुई. औरतों में जैसे भय की तरंग-सी फैल गयी.

"कुछ देर विश्राम कर लीजिए." साधले मामा ने कहा, "सामान आगे कहारों के साथ जायेगा."

"ना! ना! अब चलेंगे ही.' सदा चाचा ने कहा, "एक बार घर पहुंचकर तो विश्राम ही करना है, दूसरा काम ही क्या है! भई, इस चाल से इस रेती में आपको उस खाड़ी तक पहुंचने के लिए दो घंटे चाहिए." सदा चाचा सबको, खासकर औरतों को सुनाने के लिए खनखनाती आवाज में बोला.

अब तक रेती में औरतों की बैठक जम गयी थी. सदा चाचा का फर्मान निकला तो धीरे-धीरे निकलने की तैयारी शुरू हो गयी.

फिर सामान लेकर कहार आगे बढ़ गये. हमारी बारात पीछे से चल पड़ी.

महादेव और मैं, दोनों सबके पीछे रहे. सूर्यास्त में अभी बहुत देर थी. उफनती लहरों पर मानो हजारों-लाखों शीशे चमक रहे थे. हवा भिनभिना रही थी.

पता नहीं कब, इतने दिनों तक स्मरण से निकल गया, वह लज्जानत मुस्कराता चेहरा क्षणभर के लिए फिर मेरी आंखों के सामने झलक गया.

दूर तक फैला हुआ वह निर्जन रेतीला रास्ता! मानो अभी-अभी उस निर्जन किनारे पर रेती में चरण चिह्न अंकित करती हुई वह अकेली आगे निकल गयी है.

समुद्र का अनवरत मंत्रघोष चल रहा है. महादेव जोर से मेरे

छाया: बी. एस. मोदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानों में चीखा, "अरे तुमसे ही कह रहा हूं मैं!"

"क्या?" चौंककर मैंने पूछा.

"गधे हो. ऐसी कौन सी तंद्रा में हो? या याद आ रही है उस छोकरी की!"

"ना!"—चेहरे को निर्विकार रखने का मैं पूरा प्रयत्न कर रहा था

"मैं कह रहा था कि हम लोग लहरों को पैरों पर लेते हुए समुद्र के किनारे-किनारे चले चलें."

महादेव पर मुझे दया आयी. बेचारे को ऐसी कोई खुशी नहीं.

चप्पलें निकालकर हम टखने तक के पानी में चलने लगे. बीच में एकाध फेनयुक्त लहर शरीर पर आती थी और पैरों तले की रेती गुदगुदाकर सरक जाती थी. हमने पैंट घुटनों तक ऊपर कर ली. फिर भी वे भीगीं ही. फिर भी कपड़ों को भिगोते मस्ती से चल पड़े.

बीच में ही महादेव ने पूछा, "नाम क्या है रे उस लेलेजी की छोकरी का?"

"मालिनी!"

अब तक करीब दस बार मैंने महादेव को उसका नाम बताया होगा.

"दिखने में कैसी है?"

"कितनी बार कहा कि अच्छी है!"

"अरे भई, अच्छी, याने कैसी? ऐक्जेक्टली कैसी!"

"फोटो नहीं देखा?"

"फोटो से क्या पता चलता है? . . . फोटो पर विश्वास नहीं करना चाहिए."

"लेकिन मैंने प्रत्यक्ष देखा है न?" खीजकर मैंने कहा.

"होगी भी." महादेव ने ऐसे कहा जैसे लाइलाज हो गया हो.

एक बड़ी-सी लहर फेन उछालती आयी. हम एक ओर हट गये. फिर भी थोड़ा सा अभिषेक हमारे सिर पर हुआ ही.

अब तक मंडली बहुत आगे जा चुकी थी. कपड़े बहुत गीले हो गये थे. महादेव के बालों से पानी चू रहा था.

"सदा चाचा ने देख लिया तो बड़ी मुसीबत होगी." महादेव का रूप देखकर मैंने कहा.

बालों के गुच्छे को छिटककर महादेव ने कहा, "सदा चाचा क्या देखेगा इस हड़बड़ी में? अभी पांच मिनट में कपड़े सूख जायेंगे इस हवा में."

गीली रेती पर हम कूदते-छलांगते चले. फिर भी हममें बहुत अंतर हो गया था. दौड़ते-दौड़ते हम हांफ गये.

हमें आते देखकर बंबई वाली भाभी ने कहा, "यह आ गयी, चकवे-चकवी की जोड़ी."

"आज के दिन इस चकवी का कौतुक चलेगा?" गंगा चाची गर्दन हिलाती हुई बोलीं, "कल उसकी चकवी आने दो, तब देखो!"

मैंने कहा, "ना!"

"ना क्या?" गंगा चाची आंखें तरेरकर बोली, "विश्वामित्र बन गये हो क्या ! ठहरो, तुम्हें सीधा करती हूं. कल वह घर में आ जायेगी तो चौकी में ही कैद कर दूंगी बिलकुल, पौ फटने से लेकर रात को सोने के समय तक, फिर रात को चक्की पर बिठा दूंगी पौ फटने तक!"

सब हंसते-हंसते लोटपोट हो गये.

गंगा चाची आठों पहर चौके में व्यस्त रहती थी. घर के [...] इतना हंसते-बोलते उसे मैं पहली बार देख रहा था.

"नाम क्या रखोगे पत्नी का?" मामी ने पूछा.

"रखेंगे कुछ!"

"हां, वह अभी थोड़े ही पता लगने देगा!" गंगा चा[...] कहा, "रखा होगा कुछ तय करके."

"ना. उसमें क्या तय करना है?"

"मैं बताऊं?" गंगा चाची बोली, "भागीरथी रखना."

"छिः."

"हमारा भैया पुराने ढंग का . . .तुम क्या रखने वाले हो, तो अब बताओ—" यह चाची की पेट में घुसने की तरकीब [...]

मैंने सिर खुजलाया.

"हां, वैसे कुछ भी हो—" गंगा चाची संतोषपूर्वक बो[...] "केशव की पत्नी है नक्षत्र जैसी सुंदर!"

मैंने महादेव की चुटकी ली.

इतने में खाड़ी निकट आयी और नामकरण का विषय [...] गया.

समुद्र अब पीछे बहुत ही गरज रहा था. खाड़ी का चम[...] पाट दूर तक उसमें जा मिला था.

किनारे पर दो-चार नावें लंगर डाले खड़ी थीं.

साधले मामा ने कहारों की मदद से सामान नाव में भर दि[...] फिर दो बड़ी नावों में बैठकर हम निकले.

सब ठीक हो गया.

▣

हम विवाह-गृह में पहुंचे.

अब भी समुद्र की गरज कानों में गूंज रही थी.

लेलेजी का घर बहुत बड़ा था. आंगन में बड़ा मंडप ब[...] गया था और द्वार पर केले के खंभों का वंदनवार.

बूढ़े लेलजी हड़बड़ी में आगे आये. फिर नमस्कारादि. [...] ने पैरों पर पानी डाल दिया, दही और भात न्योछावर कर दि[...]

साधले मामा ने कहा, "कुएं पर हाथ-पैर धो आयें. तब [...] चाय का प्रबंध हो ही जायेगा." हम सब पिछवाड़े कुएं पर [...] नीचे तक नारियल और सुपारी के पेड़ों का प्रदीर्घ हरा-भरा ब[...] फैला था. कुएं पर रहट चल रहा था.

हम कुएं पर उतरे ही थे कि पिछवाड़े बरामदे में बैठी चार[...] लड़कियां भर्रऽऽ से अंदर भाग गयीं. मेरी नजर भटक रही थी. [...] जमघट में 'वह' थी?

अंदर कोई महिला बड़ी आवाज में सुर को लंबा खीं[...] बोल रही थी. बोल क्या रही थी. . .गरज ही रही थीः

"अब नहीं भेजा जायेगा ऽ ऽ हां ऽ ऽ तुम्हारे कमल-समल [...] जाने दो! ये कौतुक ही करने थे तो दुपहर को क्यों नहीं [...] कभी की कह रही हूं. . .लेकिन गपशप और बकवास खत्म [...] तब न?. . .अब क्यों धीरे बोलूं. . .तुम मत जाओ और उनको [...] कहीं नहीं भेजना है. . .यह क्या समय है जाने का?. . .अभी [...] जी आ जायेंगे. ."

पिछवाड़े आंगन में बीच में एक कटहल का आलवाल था. [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं क्षणभर के लिए वहां उलझ गये. . .प्रायः उसी के बारे में सोच रही होगी. . .फिर वह अभी कहां जाना चाहती थी?. . . जब कि जब हम आये तब वह यहीं पर बाल संवार रही थी. धीरे से महादेव की ओर देखा. एक आंख दबाकर कर वह सिर्फ मुस्कराया. इतने में सदा चाचा की पुकार कानों से टकरा गयी, "...देवऽऽ"

झट से हम वहां से चलते बने.

हाथ-पैर धोकर हम अगले द्वारा पर, मंडप में आये. तब तक मंडप में एक ओर तकिये इत्यादि रखवाकर बौक का इंतजाम हो गया था. चाय-वाय होने के बाद लोग वहीं पर विश्राम के लिए बैठ गये.

मंडप में अब बहुत भीड़ इकट्ठा हो गयी थी. सब काम जल्दी-जल्दी निपटाये जा रहे थे. कोई दरियां बिछा रहा था, कोई केले के पत्ते पोंछ रहा था. कहीं गैस की बत्तियां साफ की जा रही थीं. बच्चे हुड़दंग मचा रहे थे. समूचा घर ही गरज-बज रहा था. इतनी भीड़ में भी मुझे अकेलापन महसूस हो रहा था. एक स्थान पर बैठा नहीं जा सकता था. मंडप में एक चक्कर लगा कर. सब मेरी ओर बड़े आदर के साथ देख रहे थे. अनमना-सा फिर वापस लौटा. महादेव अखबार देख रहा था, उसके पास जा बैठा.

कुछ देर बाद ऊबकर महादेव ने अखबार फेंक दिया. और लंबी अंगड़ाई ली. और वह धीमी आवाज में बोला, "यहां बैठकर क्या करें? जरा बाहर घूम आयें?"

"मैं भी यही सोच रहा था, लेकिन कहां जायेंगे. गांव की कुछ जानकारी अपने को है नहीं."

"धत् तेरे की! इसमें क्या है? जिस रास्ते जायेंगे, उसी रास्ते वापस आयेंगे. अंधेरा होने से पहले ही आ जायेंगे—बस?"

हमने इधर-उधर देखा. सदा चाचा कहीं नहीं दिख रहा था. शायद सांवले मामा के साथ कहीं गया था. दादाजी और पिताजी लेलेजी से गप्पें हांक रहे थे.

हम धीरे से उठकर पीछे वाले आंगन में आ गये.

मेरी नजर फिर घूमने लगी. यों ही लगा कि वह अब दिख जाये. आंगन में, कुएं पर. . .कहीं पर. . .दिखना ही चाहिए, वरना तो. . .क्या हर्ज है!

पीछे शांति थी. ओसरे में दो-तीन कहारिनें बैठी थीं. कटहल के डाल पर वह रहट खींचनेवाला कहार बैठा था. हमें देखते ही उठकर सामने चला आया. अरे बाप रे बाप! अब क्या बोलेंगे. मैं महादेव बोला, "जरा बगीचे में घूम आते हैं."

कहार बोला. . ."हां हां!"

हम बगीचे में उतरे और पीछे न देखते हुए सीधे चल पड़े—धूप उतर गयी थी. वृक्षों में हवा भरकर भिनभिना रही थी. सब हल्का और ताजा-ताजा सा लग रहा था.

बगीचे के बीच से बहुत आगे निकलने पर बड़ा खेत था. मैं बाकर हम रुके. पता नहीं चल रहा था कि किधर जायें. पगडंडी नहीं दिख रही थी. चारों ओर घनी झाड़ियां थीं. रास्ता कोई नहीं फिर खेत के बीच से आगे चलने लगे. कुछ देर बाद झाड़ी में से मंदिर का शिखर सिर उठाता हुआ दिखा.

ग़ज़ल

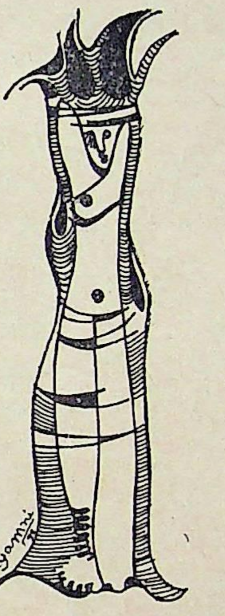

आपके दिल अगर नहीं होते,
हम फकीरों के घर नहीं होते.

जिनको चांदी चुगायी जाती है,
उन परिंदों के पर नहीं होते.

काश, दुनिया में ऐसा हो जाता,
गांव होते शहर नहीं होते.

जिनको सुन-सुनके नींद आ जाये,
ऐसे किस्से इधर नहीं होते.

उनकी आंखों की कसम खा लेते,
वेद-कुरआन गर नहीं होते.

▣ कैलाश सेंगर

महादेव ने कहा, "मंदिर है, अतः कहीं रास्ता भी होगा ही."

मुक्ति की सांस छोड़कर हम शिखर की ओर उन्मुख होकर चलने लगे. पता नहीं, कितनी देर तक हम चलते रहे, लेकिन रास्ता तो अलग, छोटी पगडंडी भी कहीं नहीं दिखाई दी. आखिर खेत खत्म हुआ और सिर्फ ऊंची-नीची बंजर भूमि दिखने लगी.

"कमाल है!" महादेव ने आश्चर्य से कहा, "इतने बड़े गांव में एक पगडंडी भी नहीं?"

"गधे हो," मैंने चिढ़कर कहा, "गलत जगह पगडंडी होगी ही कैसे? मुझे लग ही रहा था कि हम गलती से कहीं और जगह ही चले जा रहे हैं!"

"फिर उसमें बिगड़ा क्या? जिस रास्ते से आये, उसी से वापस चले चलेंगे!"

हमने यों ही पीछे मुड़कर देखा. दूर तक वह निर्जन खेत निर्विकार-सा फैला था. लेलेजी का बगीचा उसके किनारे की झाड़ी में पता नहीं कहां लुप्त हो गया था. . .

इतने में प्रचंड आश्चर्य से महादेव ने कहा, "अरे. . .यह क्या भूत-जाल है? अपना वह मंदिर का शिखर कहां गया?"

अब तो हद हो गयी! आंखें फाड़-फाड़कर हमने सामने देखा.

अब तक झाड़ी के बीच से सिर उठाकर झांकने वाला वह मंदिर का शिखर, वह झाड़ी, सब कहीं लुप्त हो गये थे और सामने आक्षितिज सिर्फ सूखी बंजर भूमि फैली हुई थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगक्षेमं वहाम्यहम्

दीपावली के दीप
जगमग जलें
अंधियारा भागे
प्रकाश फैले।
जीवन बीमा के
जब दीप जलें
आंगन आंगन
सुरक्षा फैले॥

भारतीय जीवन बीमा निगम

PRATIBHA-LIC-408/80-HIN-B

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में हवा सरसरा रही थी. दूर कहीं समुद्र-घोष हो रहा और कुछ समय के उपरांत वह समस्त प्रदेश अंधकार में डूबने गा था.

सिर हिलाता हुआ महादेव बोला, "कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य मुझे लगता है, हम मंदिर छोड़कर बहुत आगे आ गये हैं. अगर हम ऐसा करें. . . ."

"माफ करो भैया. जिस रास्ते से आये, अगर उसी से वापस सके तो गनीमत समझो.

"लेकिन केवल उस झाड़ी तक हो आने में क्या हर्ज है?" देव बोला, "जब हम आ रहे थे, तब दाहिने हाथ को वह मंदिर शिखर दिख रहा था. अब हम दाहिने हाथ मुड़कर कुछ आगे कर देखें!"

". . .हां. . .हां. मतलब यह कि जो खेत अभी दिख रहा है, वह न दिखे! !"

"खेत कहां जायेगा?" जिद में आकर महादेव बोला, "हम में उतरकर ही उस दिशा में चलेंगे. . ."

महादेव का तर्क ठीक था. यह भी एक पहेली ही थी कि इतना मंदिर कहां गुम हो गया था—

मन में कुछ भय हो रहा था, लेकिन अब वापस जाने को भी नहीं कर रहा था. फिर उसी तरह झटपट कदम बढ़ाने लगे. अब समुद्र का शोर निकट से आने लगा. महादेव ने कहा, देवालय की कथा बड़ी मनोरंजक है."

भय से पैर भी उल्टे-तिरछे पड़ रहे थे. एक ओर सदा चाचा का चेहरा सामने आ रहा था—मैंने महादेव से कहा, "तुममें हृदय नाम की वस्तु भी है या नहीं? यह क्या कथा बताने का है?" हांफने के कारण मैं बोल नहीं पा रहा था.

महादेव ने कहा, "लेकिन कथा सचमुच सुनने लायक है-बोलने की धुन में रास्ता भी जल्दी-जल्दी कट जाता है."

मैं केवल हांफ रहा था. फिर महादेव बताने लगा.

"दादाजी ने यह कथा कभी मुझे बचपन में बतायी. बहुत वर्ष पहले बात है. शायद एक शतक उलट गया होगा. उस समय यह मंदिर था. स्वयंभू शिवलिंग पर सिर्फ एक छोटा गुंबद था. एक दिन में बहुत बड़ा तूफान आया. पर्वताकार लहरें उठने लगीं. कई जहाज, नावें, किश्तियां—सबको समुद्र निगलता चला ऐसे में एक वृद्ध व्यापारी का जहाज मृत्यु से जूझता हुआ किनारे के पास से गुजर रहा था. जहाज पर लोग भयानक भय में थे. सौभाग्य से यह गुंबद उस वृद्ध व्यापारी को नजर आया. उस समय उस वृद्ध ने व्याकुल होकर शिवशंकर की प्रार्थना की. . .'हे भक्तवत्सल, दीनों के उद्धारक, विघ्नविनाशक. . . शंकर. . .इस संकट से मेरे जहाज को उबारो. . .मैं जन्मभर की कमाई खर्च कर इस सागर तीर तुम्हारा एक भव्य मंदिर बनवा दूंगा. . .! शंकरजी ने उस वृद्ध की पुकार सुनी और एक पर्वताकार लहर ने उस जहाज को हौले से इस किनारे पर उतार दिया... उस व्यापारी ने आठ-दस लाख रुपये खर्च कर यह भव्य शिव का शिवालय बनवाया. . ."

महादेव रुका. . .मेरी आंखों के सामने वे अजस्त्र लहरें और शांत हो गयीं.

"यह कथा तुमको बताने का उद्देश्य इतना ही था कि वह मंदिर समुद्र किनारे पर है और चूंकि समुद्र की आवाज इतनी निकट से आ रही है, वह यहीं कहीं है."

महादेव की यह बात मुझे बहुत पसंद आयी और इतनी देर के बाद पहली बार मुझे लगा कि खूब जोर से हंसूं.

बातें करते हुए हम आगे चल पड़े तो एक तालाब का घाट दिखाई देने लगा, पहले लगा कि यह कुआं ही होगा, लेकिन अब वह खूब बड़ा तालाब था. चारों ओर से अंदर उतरने के लिए काले पत्थर की सीढ़ियां थीं.

हम तालाब की ओर दौड़ पड़े फिर अवाक होकर सामने देखते रह गये! इतनी देर तक लुप्त हुआ वह मंदिर का शिखर हमारे सामने ही शांत खड़ा था. मंदिर विशाल था और उसके चारों ओर ऊंची दीवारों से घिरा काले पत्थरों का प्रशस्त आंगन था. दीवारों के परे कलश को छूने वाले ऊंचे घने पेड़ थे.

तालाब के पास से ही सीढ़ीदार रास्ता नीचे आंगन में उतर रहा था.

इतनी देर तक की गयी भाग-दौड़ सार्थक हो गयी. हम तालाब के किनारे पैर लटकाकर बैठ गये और इतनी देर तक पता नहीं हमारा ध्यान कैसे नहीं गया. . .

उस काले घुप पानी में असंख्य लाल कमल खिले थे.

झट से सीढ़ियां उतरकर हम नीचे गये. क्षण भर के लिए लगा, अपनी घनी ललौही पंखुड़ियों को अलग-अलग कर वे सब मानो हमारी ही तरफ टकटकी लगाकर देख रहे हैं!

■

पानी शांत था. उस पर जरा सी भी रेखा नहीं थी, धूप की मंद किरणों का एक गुच्छा दीवार पर उतर गया था और अब डंठलों के नीचे हरे पत्ते दिख रहे थे.

नीचे बैठकर मैंने हौले से पानी पर हाथ फेरा.

ठंडी गीली गंध फैल गयी थी.

इतने में महादेव ने डंठल के नीचे हाथ डालकर एक कमल तोड़ लिया.

महादेव बोला, "केशव, देखो तो यह कमल कितना सुंदर है!"

मैंने हाथ आगे बढ़ाया. महादेव बोला, "हां, सूंघो मत. चलो मंदिर में जाकर हम इसे पिंडी पर अर्पित करेंगे."

हम कमल से भरे तालाब के किनारे पर आ गये. सिर पर ऊंचे पेड़ों के पत्तों में हवा सरसरा रही थी.

मंदिर का वह गाढ़े रंग का काला पथरीला आंगन शांत था. दीवारों के परे समुद्र गरज रहा था. सीढ़ियां उतरकर हम आंगन में आये तो एक और बड़ी झील दिखाई दी.

महादेव ने कहा, "हम आंगन की प्रदक्षिणा कर सभा मंडप में जायेंगे."

हम आंगन से आगे चले गये तो एक ओर तालाब दिखने लगा और बाद में देखते क्या हैं कि सभा मंडप के दोनों ओर उस विस्तृत आंगन में तालाब ही तालाब थे.

फिर हम धीरे से रमते-रमते चलने लगे. एक तालाब के किनारे एक विशाल बकुल वृक्ष था. आंगन में फूलों की राशि बिखर रही थी और बकुल महक रहा था. हम उस तालाब की ओर चलने लगे तो आवाज कानों से आ टकरायी. आंगन में तो कोई नहीं था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर कोई बोला? हमने अचकचाकर इधर-उधर देखा.

फिर बहुत देर तक नीरवता छायी रही.

कुछ देर बाद आवाज पुनः सुनाई दी और फिर वही हंसी की मंद खनखनाहट! हमारे पैर जड़ हो गये. हंसने की आवाज लड़कियों की थी.

शायद तालाब में ही कोई बोल रहा था. हम धीरे से उस बबूल के वृक्ष के पास वाले तालाब के पास गये और किनारे पर से अंदर उझककर देखा.

क्षण भर के लिए—केवल क्षण भर के लिए—किसी संवेदन से समस्त शरीर नख से शिख तक थरथरा गया.

"अरे यह तो 'वह' दिख रही है!" मैं महादेव के कान में फुसफुसाया.

"कौन वह?" कुछ समझकर महादेव ने पूछा.

"वह!.."

महादेव आश्चर्य से मेरी ओर देखता ही रह गया. उन दोनों की पीठ हमारी ओर थी. क्षणभर को लगा, हमारी आंखें धोखा तो नहीं खा रही हैं? इस समय 'वह' यहां आयेगी ही कैसे?

लेकिन शंका के लिए गुंजाइश ही नहीं थी. वह वही थी.

खूब हाथ बढ़ाकर भी वह कमल उसके हाथ में नहीं आ रहा था. लाल-लाल मेंहदी लगा वह गोरा-गोरा हाथ कमल के बिलकुल डंठल तक पहुंचा और पानी की छोटी सी लहर उस कमल को और दूर ले गयी. फिर हताश-सी होकर वह खड़ी रह गयी. . . वह केवल उसी कमल को क्यों चाह रही थी! आगे बढ़कर उसे ला दूं क्या?

मैंने महादेव की ओर देखा. उसके भी मन में वही बात मचल रही होगी. हम धीरे से सीढ़ियां उतरने लगे.

इतने में साड़ी को किंचित ऊपर उठाकर वह और घुटने तक पानी में उतर गयी. और आगे झुककर झट से उसने उस कमल को तोड़ लिया.

हम वहीं पर रुक गये.

"ऐं, अब बस हो गया री." उसके साथ वाली दूसरी लड़की बोली, "तुम्हारा होगा वहां सीमांत पूजन और हमारी होगी पिटाई. पता है कितना समय बीत गया है?"

"कमल तो जमा होने दो न!" उसने कहा. "एऽ ऽ हार कितने सुंदर दिखेंगे, नहीं?"

"हांऽ ऽ ऽ! दिखेंगे क्यों नहीं?"

फिर शाम को वह महिला इन दोनों को ही डांट रही थी, फिर भी ये दोनों कमल तोड़ने आ गयी थीं?

"तुम्हारे उन राजापुर वालों ने जीवन में कभी कमल देखे होंगे या नहीं, कौन जाने?" वह लड़की सुरों को खींचकर बोल रही थी. "हां, हैं सब नमूने कुल मिलाकर. बिलकुल राजापुरी अंगोछे!"

"ऐ ऽ ऽ नाहक उंगली मत उठाना. कहे देती हूं." कुल बहुत ही तीखा प्रकरण था . . . हम राजापुरी अंगोछे थे! ऐं ऽ ऽ ऽ

"हाय दैया. गुस्सा भी आने लगा अभी से?" वह गर्दन मोड़कर बोलने लगी.

मैंने महादेव की ओर देखा. उसकी नजर में गुस्से का लेशमात्र भी नहीं था, बल्कि उसकी आंखें अभूतपूर्व रूप से क्षमाशील और दयार्द्र दिख रही थीं.

महादेव के हृदय में कहीं अंदर ही अंदर निश्चय ही कम खिल रहा था.

उसने कमलों की डाली उठायी और उन दोनों ने एकद पीछे मुड़कर देखा.

▣

आंखों के सामने यकायक लाखों कमल खिल गये—थरथराये वे दोनों वहीं पर जड़ होकर खड़ी रह गयीं.

एक-एक पल युग समान. झट से कुछ बोलना चाहिए था लेकिन ना . . . कुछ भी सूझ नहीं रहा था.

वे दोनों पाषाण की भांति स्तब्ध. क्या वे भगवान को गुहार रही थीं? . . . . "हे भक्तवत्सल भगवान, दीनदयाल, हम दो को दो कमल बनाकर इस तालाब में छोड़ दे. हम फिर तुम्हें हर दिन आठ-आठ लाख दुआएं अर्पित करेंगी?"

इतने में उस भक्तवत्सल ने उस महादेव को बोलने की प्रेरणा दी.

"आइए न ऊपर!" हंसकर महादेव ने कहा.

. . . . वाह! यह ऐसा बोलना तो बहुत ही आसान था, लेकिन हमें कैसे नहीं सूझा?

उन दोनों ने हमारी ओर देखा. फिर उनके चेहरों पर अनजाने ही हास्य फूट पड़ा. फिर हम भी हंसने लगे.

वे दोनों शर्माती हुई सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ गयीं :

"हम रास्ता भूलकर इधर आ गये." महादेव बोला. "वह मंदिर के ऊपर वह खेत हैं न . . . . वहां आये थे घूमने-घामने वहां से यह मंदिर दिखाई पड़ा."

उन दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, लेकिन यह न पूछा कि और क्या बोलना चाहिए. वैसी ही खामोश खड़ी रहीं.

"यह आपका मंदिर तो बहुत ही सुंदर है. कमलों के ये तालाब देखने पर लगा कि यहां से हिलना ही नहीं चाहिए."

वे सिर्फ मुस्करायीं.

"इन तालाबों के कमल कभी खत्म ही नहीं होंगे." उसके साथ वाली वह दूसरी लड़की कुछ साहस के साथ बोली.

"सच, आश्चर्य है!" अत्यधिक आश्चर्य दिखाता महादेव बोला.

"नये-नये खिलते होंगे." मैंने कहा.

फिर हम सब खामोश हो गये.

"बैठिए न!" महादेव बोला.

"ना. बैठेंगे कैसे?" वह लड़की बोली. "देर हो रही है! अभी और भी बहुत से कमल तोड़ने हैं."

"इतने काहे के लिए?" महादेव ने संवाद जारी रखा.

"सीमांतपूजन है न . . . ."

अब तक 'वह' भी नहीं बोली थी. नीचे गर्दन झुकाकर हु खड़ी थी.

"इसने कहा, सीमांतपूजन के लिए कमल के ही हार होंगे चाहिए. फिर क्या करते? कहा, चलिए ऽ ऽ!"

"ऐं ऽ! मैंने कहा था?"—वह नतमस्तक शर्माती-सी कि तरह बोल गयी.

". . . ओह! बस? इतनी सी बात है? हम तोड़ देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमल—जितने चाहिए आपको?" मैंने कहा.

"ना-ना!" वे डरकर बोलीं.

"हूं! इसमें डरने की क्या बात है?" महादेव बोला. उनके उत्तर देने से पहले ही सीढ़ियां उतरकर हम नीचे पहुंच गये. फिर वे भी हमारे पीछे नीचे चली आयीं.

हमने फटाफट जो भी कमल हाथ में आये, तोड़ दिये! कमल हाथ में नहीं आ रहे थे. हाथ आगे बढ़ाने पर वे धीरे दूर चले जाते थे.

"हम वहां परले वाले बड़े तालाब के पास जायेंगे?" वह लड़की बोली. "वहां बहुत कमल हैं."

आंगन को चक्कर देकर हम उस बड़े तालाब के पास आये. बहुत बड़ा तालाब था वह. उस तालाब का पानी भी पारदर्शी, स्वच्छ था. किनारे पर से ही उसका अपार हरा और आर्द्र तल दिख रहा था. और उस गूढ़ हरे प्रकाश में जहां देखा जाये, वहां असंख्य, अनंत कमल खिल गये दिख रहे थे.

सीढ़ियां उतरकर हम नीचे गये.

"सीमांतपूजन में हार आवश्यक होते हैं?" महादेव ने पूछा.

"धत्त्!" वे दोनों खूब जोर से हंसने लगीं.

"बारह वर्ष रामायण....और सीता राम की कौन?" वह लड़की पहले की तरह सुरों को खींचती-सी बोली.

मैंने धीरे से 'उस' की ओर देखा. वह भी चोरी-चोरी मेरी ओर देख रही थी.

"हमारा कहां हुआ है सीमांतपूजन?" महादेव ने पूछा.

"हाय री. ऐसे ही सीमांतपूजन कहीं होता है? वह तो विवाह में होता है."

"शादी में हम सब कुछ थोड़े ही देखते हैं?"

"अब सब कुछ देख रखिए." वह हंसती हुई बोली. अंतिम सीढ़ी पर उतरकर हम झटझट कमल तोड़ रहे थे. मेरे हाथ में कमल नहीं अंटते थे, तब वह डाली को आगे बढ़ाती थी....

बोलते-बतियाते हम लोगों के बीच खूब अंतर पड़ गया. महादेव और वह एक ओर और हम दोनों एक ओर. वे दोनों बकवास कर रहे थे. हम चुप थे. सूझ ही नहीं रहा था कि क्या बोला जाये.

बीच में एक बार उसने यह कहा, "धीरे...हूं...पैर फिसलेगा." इस पर खूब विचार करने पर भी मुझे कोई जवाब नहीं सूझा. फिर मैं हंस पड़ा, फिर वह भी हंस दी.

फिर बहुत देर के बाद वह लड़की सुन ले, इतनी ऊंची आवाज में मैंने कहा, "वह कौन है आपकी?"

"चचेरी बहन." इतना उत्तर देते समय भी उसका सीना धड़क रहा था अर्थात् वह उसको सुनाई पड़ा भी. वह जोर से बोली, "मेरा नाम वासंती है...! और वह क्या? आप उसे 'आप' कहकर क्यों बुला रहे हैं?"

मैं कुछ नहीं बोला. तब वह वासंती को डांटकर बोली, "...अब हो गयी तुम्हारी मजाक शुरू?"

"हाय दैया! गुस्सा भी आ गया?" वह हमेशा की तरह सुरों को खींचती सी बोली, "कल का दिन! फिर कौन आ रहा है मजाक करने?"

उसका चेहरा लाल हो गया.

मैंने अंजुली के फूल उसकी डाली में डाल दिये.

"मैं इसका चचेरा भाई हूं—समझी!" उधर महादेव जोर से बोला.

"ओह! सच?" वह फिर हंसने लगी.

फिर हम भी जोर से हंसने लगे. अब हम कुछ दूर हो गये थे. डाली नीचे रखकर वह सीढ़ी पर बैठ गयी.

वहां दूर महादेव की बकवास चल ही रही थी और बीच-बीच में वासंती का खिलखिलाकर हंसना....

बीच में उसने मेरी ओर चोर नजर से देखा. फिर बहुत देर तक हम एक-दूसरे की ओर देखते रहे.

मेंहदी लगी उसकी लंबी उंगलियां वेणी पर फिर रही थीं और चारों ओर अनंत कमल निःशब्द खिल रहे थे.

फिर हम उस तालाब से ऊपर आये. दूसरे तालाब में उतरे... फिर तीसरे...फिर चौथे...फिर उस कमल से भरे प्रचंड अहाते में बहुत बहुत घूमे और अंत में थककर पक्षियों की भांति एक तालाब के किनारे बैठ गये.

अब धूप पूरी तरह उतर गयी थी. गर्भगृह का सुनहरा कलश ऊंचे आसमान में झिलमिला रहा था. उस प्रकाश के गर्भ की किसी झिलमिली में असंख्य कमल मानो पानी पर हौले से खिल रहे थे.

पता नहीं कितना समय बीत गया.

▣

मंदिर में शाम की नौबत बज गयी. हम हड़बड़ाकर होश में आ गये.

कभी का अंधेरा छा गया था.

काले घुप ठंडे अहाते में नगाड़ा बज रहा था.

"अब चाची गुस्सा होंगी! ...वासंती सहमकर बोली, "क्या किया जाये अब? उधर सीमांतपूजन के लिए पंडितजी भी आ गये होंगे."

सदा चाचा का गुस्सैल चेहरा आंखों के सामने दिखने लगा.

अहाते के बाहर आकर हम सरपट चलने लगे. डाली लिये उसका हाथ थरथरा रहा था. मैंने पूछा, "मैं लूं डाली?" वह कुछ नहीं बोली. उसके मुंह से शब्द ही नहीं फूट रहा था. सीना धड़क रहा था.

फिर मैंने डाली उसके हाथ से ले ली.

अंधेरे में समुद्र गरज रहा था. धीरे-धीरे उसकी आवाज दूर होती गयी.

हम बागान में आये तो उसने डाली मुझसे ली और वे चटपट आगे चली गयीं.

औचक से हम क्षणभर रुके और अकेले-से उस खिन्न अंधेरे में चलने लगे.

शहनाई बज रही थी.

मंडप में जगमगाहट थी. भीड़ हो गयी थी.

और किसी की निःशब्द पुकार की भांति आकुल करने वाले उन सुरों पर लाखों कमल-पंखुड़ियां थरथरा रही थीं. □

(अनुवाद : चंद्रकांत बांदिवडेकर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों की रोटी

• राही मासूम रजा

वह इधर कई दिनों से, लगातार, अपने-आप को खोज रहा था. पर खोने वाला कुछ ऐसा खोया था कि खोजते-खोजते उसकी आंखें दुख गयीं, पर उसे अपना पता न चला.

आखिर मैं कहां जा सकता हूं? वह दिन-रात अपने-आप से कई सवाल करता. शायद मुझे कोई सरकारी नौकरी मिल गयी हो! और क्या, इस दुनिया में कुछ भी हो सकता है. अगर जनता पार्टी की सरकार बन सकती है और फिर वह पार्टी अंग्रेजी के तमाम अक्षरों में तकसीम हो सकती है और श्रीमती इंदिरा गांधी फिर वापस आ सकती है और चीनी 15 रुपये किलो मिल सकती है और अगर भद्दी फिल्मों पर सरकार एंटरटेनमेंट टैक्स ले सकती है और अगर मुसलमान अपना घर जलवाने, और अपने आपको कत्ल करवाने के लिए दंगे शुरू कर सकते हैं, तो वह सरकारी नौकरी क्यों नहीं कर सकता. तो उसने अपने आपको सरकारी ऑफिसों में ढूंढ़ने का फैसला किया.

परंतु चूंकि वह एक पढ़ा-लिखा जहीन आदमी भी था और किसी बड़े आदमी का रिश्तेदार भी नहीं था, इसलिए उसे कोई

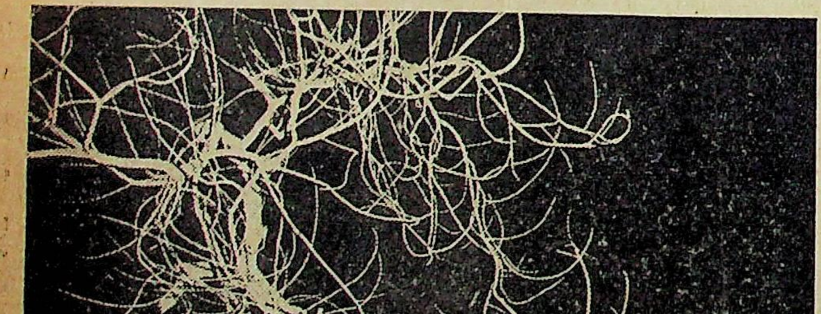

●सुधीर कुमार सक्सेना

“जब तक चीनी पांच रुपये किलो तक मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फिर चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई, पंद्रह रुपये किलो हो गयी, और नींद उड़ गयी. और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा! नींद तो सपने की रोटी है ना.”

अच्छी नौकरी तो मिली नहीं होगी. उसे
भी मालूम था कि जिन नौकरियों में तनख्वाह
चाहे भले ही कम हो, पर ऊपर की आमदनी
के रास्ते हों, वह नौकरियां सरकारी
आदमियों को मिलती हैं. . .तो फिर
कहां हूंगा. इनकम टैक्स? सेल्ज टैक्स?
पुलिस? मिनिस्टरों का चपरासी? रेलवे
में पार्सल क्लर्क? टिकट चेकर? राशन
ऑफिस? म्युनिसिपल बोर्ड में पैदाइश
और मौत लिखने वाला क्लर्क? सरकारी
अस्पताल में कंपाउंडर?. . . ऐसी तो
नौकरी ही नहीं, जिसमें ऊपर की आमदनी
न हो. किसी में कम है किसी में ज्यादा
पर हर सरकारी नौकरी में ऊपर
आमदनी की कोई टिप्पस भिड़ ही जाती
इसी लिए तो सरकार तनख्वाह कम देती
है. अगर ऊपर की आमदनी को तनख्वाह
में मिला दिया जाये तो इनकम टैक्स
देने में सरकारी नौकर का भुरकुस निकल
जायेगा और बेचारा भूखा मर जायेगा.
इसे कहते हैं सोशलिस्टिक पैटर्न! सरकार
का पैसा भी कम जाता है और सरकारी
नौकर अल्लाह के फज्ल से साथ खैरियत
के जी रहे हैं. उसने तो अब तक यह
सुना था कि किसी सरकारी नौकर
जीने से तंग आकर आत्महत्या कर
हो. तो साहब सरकारी नौकरी में
न कोई बात तो होगी ही, नहीं तो
तनख्वाह वाली सरकारी नौकरियों
तरफ लोग भागें क्यों. . .

लेकिन अगर हर सरकारी नौकरी
ऊपर की आमदनी का फुंदना टंका
है तो फिर यह नौकरी उसे तो मिल
सकती, क्योंकि मिनिस्ट्रियां अब
ज्यादा हो गयी हैं कि मंत्रियों के रिश्तेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी सहायता करने वाले एमपियों और एम. एल. एयों और उनकी मदद करने वाले कारखानेदारों, दूकानदारों और टचपूंजिये मुकामी नेताओं ही के लिए नौकरियां कम पड़ने लगी हैं तो उस बिचारे को सरकारी नौकरी कैसे मिल सकती है!

वैसे उसमें एक और बहुत बड़ी खराबी भी थी जो सरकारी नौकरी के रास्ते में आड़े आती थी. उसका कोई धर्म नहीं था, उसकी कोई जात नहीं थी और हमारी सेक्युलरिस्टिक सरकार धर्म और जाति को ठोंक-बजाकर देखे बिना किसी को नौकरी देती नहीं. क्योंकि मंत्री तो अलग-अलग जातियों के हैं. उनके सहायक एम. पी. और एम. एल. ए. भी अलग-अलग जातियों के हैं. और उनके सहायक कारखानेदार, दूकानदार और टचपूंजिये मुकामी नेता भी अलग-अलग जातियों के हैं. तो सरकार अगर आंकड़े बराबर न रक्खे तो इन लोगों को यह बताये कैसे कि नौकरियों के सिलसिले में उनकी जाति के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ! क्योंकि सरकार अगर उन्हें यह आंकड़े नहीं दिखायेगी तो आने वाले चुनाव में वोट कैसे पायेगी? क्योंकि सेकुलरिज्म हमारा सरकारी नारा अवश्य है. यह नारा बड़ा खूबसूरत और बड़ा रसीला और बड़ा मनभावन भी है, पर चुनाव के दिन में हम इस नारे को जरा गोल कर जाते हैं, टाले जाते हैं. हमारा सेकुलरिज्म हद से हद तैंतीस बरस नहीं तो तिरसठ बरस पुराना है. पर जातिवाद तो साहब हजारों बरस पुराना है. पुरानी शराब है और साहब छूटती नहीं है मुंह से ये कफिर लगी हुई. अब उस उल्लू की दुम फाख्ता को यह कैसे समझाता कि अरे भैया, जीना है तो किसी न किसी धर्म और न किसी न किसी जाति की उंगली पकड़ ले! निधर्मी मारा गया तो किसी पत्र-पत्रिका में खबर भी नहीं छपेगी!....

यकायक, अपने आपको खोजते-खोजते, उसे वह मास्टर साहब याद आ गये जो दर्जा चार के लड़कों को यह पढ़ा रहे थे कि धरती चिपटी है. किसी ने कहा, "मास्टर साहब यह क्या?" तो बोले, "जी, यह तो मैं भी जानता हूं कि जमीन गोल है. पर जितनी तनख्वाह मिलती है उसमें यही पढ़ाऊंगा कि चिपटी है."

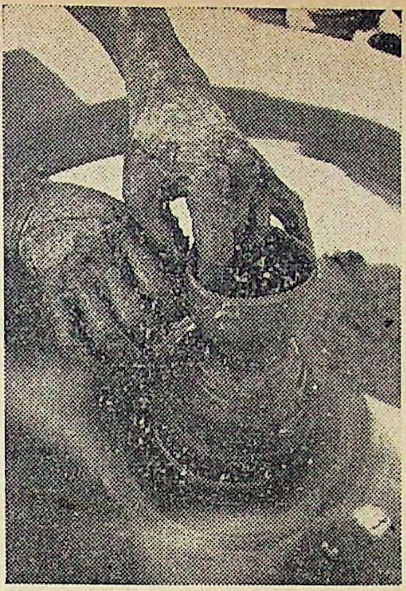

● सुभाष परिहार

पर वह उन मास्टर साहब जैसा तो था नहीं. उसे तनख्वाह न भी मिले, तब भी वह यही पढ़ाता रहेगा कि जमीन गोल है. और सरकार बच्चों को इस तरह की खतरनाक चेतना देने से डरती है. यदि उन्हें यह पता चल गया कि चिपटी दिखाई देने वाली यह धरती वास्तव में गोल है तो कल बहुत-सी टेढ़ी बातें भी उनकी समझ में आ सकती हैं और वह जवान होकर टेढ़े-सीधे सवाल कर सकते हैं, अर्थात सरकार की भलाई इसी में है कि लोग यह न जान पायें कि धरती गोल है? इसलिए वह टीचरों की तनख्वाह कम रखती है! लेकिन वह चूंकि यही पढ़ायेगा कि जमीन गोल है, इसलिए पढ़ाने की नौकरी उसे तो मिल ही नहीं सकती. पढ़ाने की नौकरी तो उन्हें मिलेगी जो ब्लैकबोर्ड पर श्री ॐ या बिसमिल्लाह लिखकर फिजिक्स पढ़ाना शुरू करें! यानी वह पढ़ाने के काम का भी नहीं.

तो फिर मैं आखिर हूं कहां? वह अबकी इस प्रश्न से जरा डर-सा गया. क्या टेलिविजन पर तस्वीर दिखलायी जाये कि बावन-साढ़े बावन साल का यह आदमी गुम हो गया है. गुम होते वक्त उसकी एक जेब में पीएच. डी. की डिग्री थी, दूसरी जेब में नये उपन्यास के कुछ पन्ने थे. मुंह में नकली दांत थे. आंखों पर चश्मा था. घर से रोशनाई लेने निकला था. जिन साहब को मिले वह करीब के थाने में सूचना दे दें!

तो क्या उसकी सूरत अब भी वैसी होगी जैसी तब थी, जब वह रोशनाई खरीदने के लिए घर से निकला था? क्यों, सूरत क्यों बदली होगी? क्या पता उसने कोई चेहरे पर कोई और चेहरा लगा लिया हो, ताकि कोई जानने वाला पहचान न सके. हमारी फिल्मों में तो बराबर यही होता है. गाल पर एक मस्सा लगा लो तो कोई नहीं पहचानता.अगर वाकई ऐसा हो सके तो कैसा मजा आये! मालिक मकान किराया मांगने आये और हम गाल पर एक मस्सा जड़ के उसके सामने से मुस्कुराते निकल गये. अब तमाम लोग अपने बिल लिए हमें खोज रहे हैं और हम हैं कि गाल पर एक मस्सा चिपकाये मस्ती छांट रहे हैं, पर जीवन में मस्से का यह महत्त्व नहीं है. यह सोचकर वह उदास हो गया और उसे वह तमाम बिल याद आ गये जो तलवार की तरह उसके सर पर लटक रहे थे. और वह पल भर के लिए यह भूल गया कि वह तो अपने आपको तलाश कर रहा है. यदि वह जासूसी उपन्यासों का कोई प्राइवेट (और शायद लिमिटेड भी!) डिटेक्टिव होता तो कब का अपने आपको तलाश करके ठिकाने लगा चुका होता. क्योंकि उसकी सारी परेशानियों की जड़ यह थी कि वह कोई और या कुछ और नहीं था कि वह, वह था. सिर्फ वह! वही!

▣

शुरू-शुरू में, यदि उसने चाहा होता तो कुछ और भी हो सकता था, पर वह कुछ और नहीं हुआ. बात यह है कि तब वह जवान था. आंखें मजबूत थीं. सपने देख सकती थीं, तो उसने अपनी आंखों को कोई और काम सिखलाया ही नहीं. और फिर ऐसा हुआ कि सपनों का बाजार मंदा हो गया और जिंदगी बाजार का उतार-चढ़ाव होकर रह गयी. जब तक चीनी पांच रुपये किलो तक मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फिर चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई. पंद्रह रुपये किलो हो गयी, और नींद उड़ गयी. और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा! नींद तो सपने की रोटी है न! सपने आदमी की तरह सख्त जान नहीं होते. आदमी तो रोटी बिना कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन जी सकता है. हिंदुस्तानी आदमी ने तो रोटी बिना जीने का विश्व रिकार्ड कायम किया है. दो-सवा दो सौ साल से रोटी बिना जी रहा है. पर सपने तो नींद बिना एक रात नहीं जी सकते. . .तो क्या वह भी अपने सपनों के साथ किसी श्मशान-घाट पर जला दिया गया होगा या किसी कब्रिस्तान में दफना दिया गया होगा?

इस सवाल ने उसे झिंझोड़ दिया. क्या यह भी हो सकता है कि मैं मर चुका हूं और मुझे अपने मरने की खबर न मिली हो? हां, हो क्यों नहीं सकता. इस दुनिया में सब कुछ हो सकता है भई! आदमी चांद पर जा सकता है, आदमी न्यूट्रॉन बम बना सकता है. आदमी, आदमी से नफरत कर सकता है, उसे कत्ल कर सकता है. उसके हाथों कत्ल हो सकता है. आदमी पंद्रह रुपये किलो चीनी बेच सकता है. आदमी श्रीमती गांधी को कुर्सी से हटा सकता है. आदमी उन्हें फिर कुर्सी पर बिठा सकता है. आदमी तो निहायत गड़बड़ चीज है. कुछ भी कर सकता है. कुछ भी हो सकता है. अगर मुझे अपने मरने की सूचना न मिली हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है! यह सोचकर उसने यह तय किया कि अपनी तलाश फिजूल है. घर लौट चलना चाहिए, तो वह घर लौट आया. और घर आकर उसने देखा कि वह तो गहरी नींद सो रहा है. अपने-आपको सोया हुआ पाकर उसने इत्मीनान का एक लंबा सांस लिया. . . .क्योंकि सोने का मतलब यह था कि वह कोई सपना देख रहा था. पंद्रह रुपये किलो चीनी के भाव के युग में भी वह सपना देख रहा था.

वह लेट गया. थोड़ी देर जागता रहा, फिर खुद अपने-आप में समा गया. □

● **10, देवदूत, बैंड स्टैंड, बांद्रा, बंबई-50**

● राही मासूम रजा

लघुकथा

चशमदीद गवाह

▣ मनीषराय

रास्ते में खून बिखरा पड़ा है. किसी कार वाले ने किसी पैदल चलने वाले को ठोकर मार दी है और फर्राटे से धूल उड़ाता चला गया है. देखते-देखते काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी है.

तभी थानेदार आ जाते हैं. रोबदार चेहरा, अधिकार मद में चूर लाल डोरे वाली आंखें. . . . .कलफ लगी तीन स्टारों वाली वर्दी. कुल मिलाकर रोबीला व्यक्तित्व.

घटना स्थल पर पहुंचते ही गरजते हैं, "किस हरामखोर की यह मजाल, मैं उसकी खाल खींच लूंगा."

"हुजूर लगता है वह किसी मंत्री की कार थी, उसका कुछ अजीब-सा नंबर था और सामने झंडे जैसा कुछ लहरा रहा था." किसी चश्मदीद गवाह ने जानकारी दी है.

थानेदार कुछ नरम पड़े, "ये पैदल चलने वालों को भी तो कोई तमीज नहीं है. न दायें देखते हैं न बायें. . . . .बस आंख मूंदकर चलते हैं, जैसे सड़क इनके बाप-दादों की हो. भला बताइए इसकी गलती के लिए. . . . (उनका इशारा घायल की ओर था, जो दर्द से बेहोश-सा हो रहा था.) एक शरीफ आदमी को बेकार परेशान होना पड़ेगा."

"नहीं हुजूर, वह मंत्रीजी की कार हो ही नहीं सकती. वह तो आयातित 'इंपाला' में चलते हैं. यह तो छोटी गाड़ी थी 'फियेट' जैसी. जरूर किसी सेठ-साहूकार की होगी." दूसरा चश्मदीद गवाह बोला है.

थानेदार के चेहरे पर रंगत आ गयी. वे मुस्कराये हैं, "मैं जानता था, मंत्रीजी या उनके सरकारी ड्राइवर ऐसी रेस ड्रायविंग करते ही नहीं, उनकी कार में तो स्पीड कंट्रोल मीटर भी लगा रहता है. जरूर यह किसी हरामखोर सेठ की कार होगी. साले सेठ का पता चल जाये, आखिर जायेगा कहां! उसने हजारों को चूसा है, मैं उसे चूस डालूंगा!"

"वह डी. एम. की कार हो सकती है साब! उसमें रेड लाइट लगी थी. सामने लाल तख्ती भी, जिसमें कुछ लिखा था. मैं जल्दी में नहीं पढ़ पाया." तीसरा गवाह बोला है.

"झूठ. . .सफेद झूठ!" थानेदार गरजे, "वह डी. एम. साब की कार हो ही नहीं सकती. हमारे डी. एम. तो कार रेस चैंपियन रह चुके हैं, वे ऐसी गलती कर ही नहीं सकते."

थानेदार अपना वाक्य पूरा कर ही नहीं पाये थे, उसी समय एक कांस्टेबिल दौड़ता हुआ आया. थानेदार को लंबा सेल्यूट देकर सूचना दी है, "हुजूर, वह कार एस. पी. साब की है. एस. पी. साब ने थाने में आपको अभी याद किया है."

थानेदार थाने भाग गये हैं. . . और घायल पड़ा तड़प रहा है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• रवींद्र कालिया

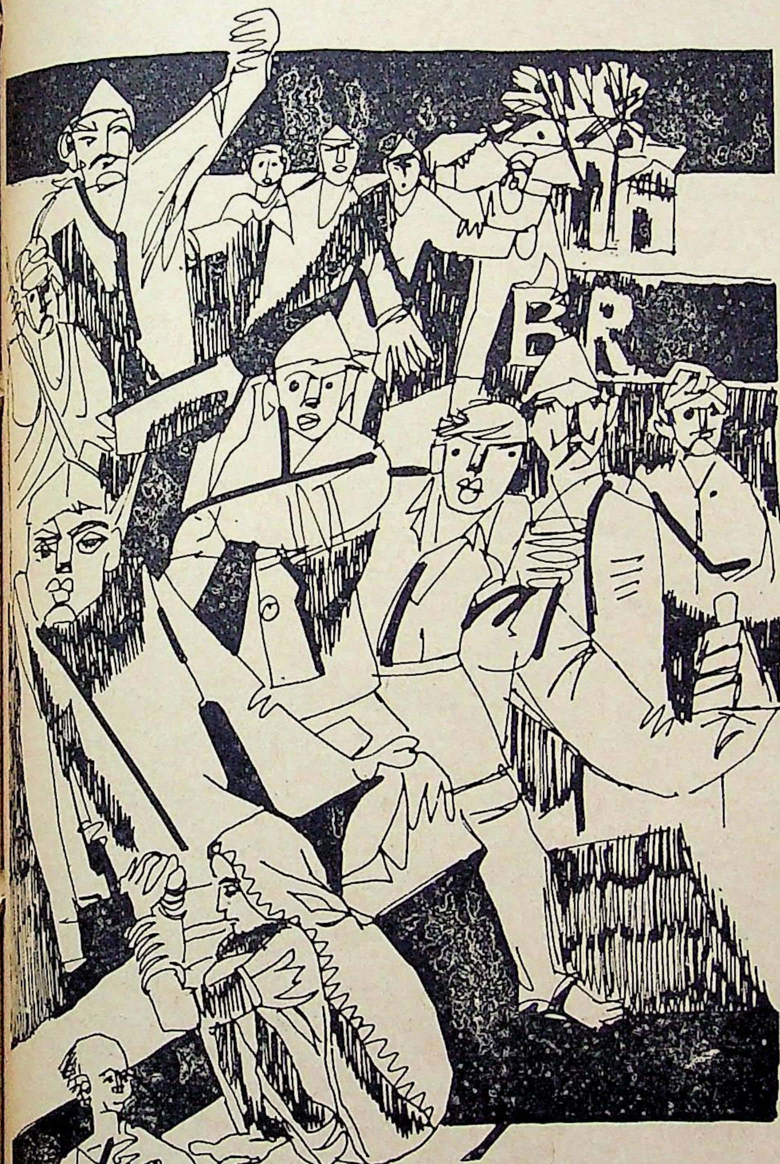

खुदा सही सलामत है

सुबह का समय था. शिवलाल नीम के पेड़ से दातौन तोड़कर गली के मुहाने पर लगे नल के पास बैठा दातौन कर रहा था. ज्यों ही नल खाली मिलता, वह कुल्ला करने लगता. अक्सर नल पर खूब भीड़ रहती थी. वह पानी का एक लोटा भरकर नल के पास ही बैठ जाता और घंटों दातौन करते हुए मलाईवाली या रुईवाली से बातें करता. मलाईवाली अस्सी से भी ऊपर थी. शाम को पाव भर मलाई एक थाली में रखकर बैठ जाती. वह अपना वैधव्य शांतिपूर्वक मलाई बेचते हुए काट रही थी. उसकी एक लड़की थी, जो अपने पति से झगड़ा करके महीने भर से लौट आयी थी. दिन भर दूर-दराज के रिश्तेदारों के यहां अपने पति की बुराई करना ही उसके जीवन का उद्देश्य हो गया था. वह शाम को थकी-हारी लौटती और अपनी मां को कोठरी के बाहर मलाई की थाली के साथ जिंदा पाकर बहुत खुश हो जाती.

शिवलाल को मलाई से बहुत इश्क था. वह शाम को खाना खाने के बाद सड़क तक आता और दो सौ ग्राम मलाई के ऊपर सौ ग्राम चीनी मिलाकर अम्मा के पास बैठकर ही मलाई खाता. अम्मा के बंधे-बंधाये ग्राहक थे. एक मरता तो दो पैदा हो जाते.

अम्मा सुबह पूजा-पाठ करके शाम के लिए अपनी थाली देर तक चमकातीं. शिवलाल अम्मा के चौतरे पर बैठा दातौन कर रहा था कि पुलिस का एक दीवान उसके पास आकर खड़ा हो गया, "यहां शिवलाल वल्द छोटेलाल कहां रहता है?"

"शिवलाल वल्द छोटेलाल या शिवलाल वल्द श्यामलाल?"

दीवान ने फाइल देखते हुए कहा, "शिवलाल वल्द छोटेलाल."

शिवलाल के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. उसके हाथ कांपने लगे. दातौन हाथ से गिर पड़ा. उसने जल्दी से कुल्ला किया और बोला, "जरूर कोई गल्ती भई है सरकार. शिवलाल तो मेरा नाम भी है."

"वल्द छोटेलाल?"

"जी."

"तुम्हारे नाम सम्मन है." दीवानजी ने कहा. "तुम्हें मेरे साथ थाने चलना होगा."

शिवलाल ने सोचा, यह जरूर हरामजादी गुलाबदेई की ही कोई काली करतूत सामने आने वाली है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मगर हुजूर, मैं तो एक शरीफ इंसान हूं. आप मुहल्ले में किसी भी मर्द से दरियाफ्त कर लीजिए, मुझसे किसी को कोई शिकायत न होगी."

"तुम्हारे ऊपर चोरी का माल खरीदने का जुर्म है. उसी की तफ्तीश होगी."

"चोरी का माल?" शिवलाल भौचक्का रह गया, "हुजूर, मेरे पास कोई माल ही नहीं है, चोरी के माल की बात तो दूर रही. एक छोटी-सी चक्की है, जिसकी रसीद मेरे पास मौजूद है."

"फिजूल की बातें करके मेरा और अपना वक्त जाया मत करो. जल्दी से तैयार हो जाओ."

पुलिस को देखकर अम्मा की कोठरी के सामने भीड़ इकट्ठा होने लगी. गुलाबदेई भी दौड़ती हुई आयी, "का भवा?"

"शिवलाल पर चोरी का माल खरीदने का इल्जाम है." भीड़ में से किसी ने कहा.

"सुनो दीवानजी," गुलाबदेई ने आगे बढ़कर ललकारा, इनको आपने हाथ लगाया तो अभी मुहल्ले में फसाद हो जायेगा."

"यह मुंहजोर औरत कौन है?" दीवानजी ने पूछा और दिलचस्पी से उसकी तरफ देखने लगा.

"मेरी घरवाली है हुजूर."

"लगता है, इसे भी चोरी करके ही लाये हो." दीवानजी ने कहा. भीड़ में से कुछ लोग मुस्कराये, मगर दीवानजी की बात सुनकर अम्मा भड़क गयीं, "आपको सरम नहीं दीवानजी, ब्याहता औरत के बारे में गलत-सलत बातें करते!"

अम्मा की बात का भीड़ पर जादुई असर हुआ. पीछे से कोई लौंडा भीड़ में झुकते हुए चिल्लया, "मारो साले को!"

"इसने औरत की बेइज्जती की है."

"मारो . . .मारो. . .!" भीड़ में से कई लोग चिल्लाये.

दीवानजी ने भीड़ को अपने खिलाफ होते देख अम्मा के पैर थाम लिये, "अम्मा, शिवलाल को मेरे साथ जाना होगा."

"इसने गुलाबदेई की बेइज्जती की है मुहल्लेवालो! यह पूरे मुहल्ले की इज्जत का सवाल है." बुढ़िया अपनी झीनी साड़ी संभालती हुई खड़ी हो गयी. गुस्से से उसका चेहरा तमतमा रहा था.

तभी भीड़ में सुगबुगाहट हुई और पीछे से एक पत्थर उछला. पत्थर दीवानजी के कान को छूता हुआ दीवार पर जा लगा. दीवार से प्लास्तर झड़ गया और अंदर से लखौरी ईंटें चमकने लगीं.

सब लोग जान गये कि नफीस के अलावा कोई यह जुर्रत नहीं कर सकता.

दीवानजी ने फिलहाल वहां से खिसक जाना ही मुनासिब समझा. मगर वह व्यूह में घिरा हुआ था. भीड़ धीरे-धीरे मोटी होती जा रही थी.

"यह वही पुलिसिया है, जो एक दिन रात को गुलाबदेई को नोचकर भागा था." भीड़ में से किसी ने कहा.

"मारो साले को! घुसने न दो मुहल्ले में!" बशीर बोला. कट्टे बनाने में बशीर का कोई सानी न था.

इतने में मुहल्ले के युवा नेता सिद्दीकी साहब मजमे में आगे बढ़ गये, "देखिए दीवान साहब! आप किसी इंसान की बेइज्जती नहीं कर सकते. मैं अभी डी. एस. पी. साहब को फोन करता हूं. आप जबसे इस थाने में आये हैं, मुहल्ले वालों का जीना हराम कर

'खुदा सही सलामत है!' यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा, आसमान का या धरती का, सही-सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की तलाश करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते, बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल, बंदों की सलामती का सवाल.

अगस्त, अंक-2: 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' इस उपन्यास की शुरुआत थी. उस अंक में की गयी घोषणा के अनुसार रवींद्र कालिया के इस अप्रकाशित उपन्यास के पात्रों से 'सारिका' पाठकों का सबसे पहले परिचय कराने के लिए हम इस अंक से इस उपन्यास के चुनींदा अंश धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने का सिलसिला प्रारंभ कर रहे हैं.

रखा है. आप चोरों, डकैतों, जुआरियों से सरेआम पैसा लेते हैं और शरीफ लोगों को फंसाते हैं. देखता हूं, आप कैसे शिवलाल को हाथ लगाते हैं!"

"सिद्दीकी साहब!"

"जिंदाबाद!"

सिद्दीकी साहब का भाषण सुनकर भीड़ में नयी चेतना आ गयी.

"दीवान की गुंडई. . ."

"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी!" बच्चा लोग चिल्लाये.

सिद्दीकी साहब दीवानजी से चिढ़े हुए थे. पिछले माह उन्होंने ए. जी. ऑफिस के एक क्लर्क काजिम की साइकिल छुड़वाने का वादा करके उसके यहां कई अंडों का नाश्ता किया था, मगर दीवान ने साथ नहीं दिया, बोला, "साइकिल कचहरी से ही मिलेगी." वे भीड़ के आगे-आगे धोबी धुले कुर्ते-पाजामे में दप-दप करते तेज कदमों से चल रहे थे.

दीवानजी ने मौके का फायदा उठाकर पास से गुजरती हुई एक मोटर साइकिल को रोका और उस पर मक्खी-की सी तत्परता से सवार हो गये. उस कठिन परिस्थिति में भी वह गुलाबदेई की तरफ देखना न भूले. किसी-न-किसी बहाने गुलाबदेई को थाने में बुलाकर साहब को वह खुश कर देना चाहते थे.

सिद्दीकी साहब हुजूम का नेतृत्व करते हुए कोतवाली की तरफ चल दिये.

▣

शिवलाल बेहद डर गया था. उसका दिल बेतरह धड़क रहा था और वह बार-बार अपने खुश्क होंठों को अपनी खुश्क जुबान से तर करने का प्रयत्न कर रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसा क्यों घबरा रहे हो. किसी का खून तो नहीं कर दिया."
...दई बोली, "पैसा देकर पट्टा खरीदा था, मुफ्त में तो नहीं."

"चुप रह हरामजादी!" वह बोला, "अब तेरे मन की मुराद ...हुई. अब मैं तो जेल में चक्की पीसूंगा और तू बेधड़क अपना ...पिसवाना."

गुलाबदेई को अब तक विश्वास नहीं आ रहा था कि चोरी का ...खरीदने पर शिवलाल को जेल हो सकती है.

शिवलाल के पास एक लोहे की खानदानी टूटी कुर्सी थी. वह ...के अंदर एक कोने में दुबककर बैठ गया. अपमान की आग ...धू-धू जल रहा था. चारों दिशाओं में उसकी बदनामी हो ...गी. हर कोई उसके नाम पर थू-थू करेगा और गुलाबदेई को ...ियां मनाने का अच्छा मौका मिल जायेगा. मौलाना शफी ...दिख जाता तो वह उसकी दाढ़ी नोच लेता. उसी ने एक ...ड़िये से परिचय करवाया था. किस गुंडे-मुस्टंडे से परिचय ...ा दिया!

अचानक शिवलाल ने चक्की पर से पट्टा उतारा और कुएं ...क दिया. उसके पास एक पुराना पट्टा था. वह उसे जोड़ने ...कि तभी खयाल आया कि यह भी कबाड़ी से ही खरीदा था. ...भागकर वह पट्टा भी कुएं की नजर कर दिया. उसकी समझ ...छ भी नहीं आ रहा था कि वह अपने प्राण कैसे बचाये. सौ रुपये ...क नोट उसने बहुत दिनों से बचा रखा हुआ था. उसने एक लौंडे ...घूमते हुए देखा तो बोला, "जा जरा चार इंची का बारह फुट पट्टा ...पैंतालिस नंबर का कांटा लेते आओ. रसीद भी बनवा लाना."

सिद्दीकी साहब भीड़ के आगे-आगे मुस्कराते हुए आते दिखाई ...

"साले को ट्रांसफर कराके ही दम लूंगा." नेताजी ने कहा, ...र तुमने चोरी का पट्टा खरीदा ही क्यों?"

"क्या बताऊं सिद्दीकी साब, मति ही मारी गयी थी. उस ...शफी ने मुझे गलत आदमी से मिला दिया."

"बहरहाल घबराओ नहीं," सिद्दीकी साहब ने पास खड़ी ...बदेई की तरफ देखते हुए कहा, "दारोगाजी तफतीश करेंगे. ...मेरे दोस्त हैं. मगर मुझे लगता है कि साला कबाड़िया खुद तो ...खा-पिलाकर बरी हो जायेगा, तुम्हारी ही तरह चार गरीब ...जायेंगे."

रवींद्र कालिया

"अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं," गुलाबदेई ने पल्लू से सिर ढांपते हुए कहा, "यह तो जेल पहुंचने के पहले ही प्रान तियाग देगा."

"मैं भरपूर कोशिश करूंगा कि शिवलाल को सजा न हो. कुछ खर्च जरूर हो सकता है. हो सकता है, मुझे लखनऊ तक जाना पड़े. आई. जी. साहब से कहलवाना पड़ सकता है."

"खर्च की आप परवाह न करें." गुलाबदेई ने अपना पाजेब खोलते हुए कहा, "मैं अपने पूरे जेवर गिरो रख दूंगी."

"नहीं, नहीं, ऐसा मत करें." सिद्दीकी साहब ने कहा, "मैं सस्ते में ही निपटा लूंगा."

"थाने से कोई आये तो मुझे बुलवा लीजिएगा."

"अच्छा सरकार." शिवलाल ने कहा.

शिवलाल भूखे पेट ही पुलिस की प्रतीक्षा कर रहा था. गुलाबदेई ने लाख कोशिश की, मगर शिवलाल ने अन्न नहीं छुआ.

▣

तीसरे दिन एक सिपाही आया और शिवलाल को अपने साथ थाने लिवा ले गया. गुलाबदेई सिद्दीकी साहब के घर की तरफ भागी. सिद्दीकी साहब घर पर नहीं थे. वह चक्की पर लौट आयी और बाहर खटिया पर बैठकर रोने लगी. गुलाबदेई को रोते देख उसका दो बरस का बच्चा भी उसके साथ-साथ रोने लगा.

घर में एक भी पैसा नहीं था. आटा जरूर था, मगर गुलाबदेई बिना खाये-पकाये ही पड़ी रही.

दूसरे दिन शिवलाल की जमानत का सवाल उठा. गुलाबदेई का कहीं कोई परिचय नहीं था. शिवलाल की मां सुबह-सुबह चली आयी थी. गुलाबदेई ने जब जमानत की बात की तो वह भड़क गयी :

"तू कुलच्छिनी कहां से चली आयी मेरे घर में. मेरे लड़के को ऐसा चूस लिया कि बेचारे का हाड़ ही बचा था. अब तेरे कुकर्मों से वह जेल में जा बसा." शिवलाल की मां छाती पीटने लगी. "तू पैदा होते ही क्यों न मर गयी. खुद तो टिमाटर की तरह ललिया रही है, वह बेचारा अपने कर्मों को रो रहा है. इस छोटी-सी उमर में उसके दांत गिरने लगे, बाल सफेद हो गये, इस कलमुंही ने उसके खून में न जाने कैसी चीनी घोल दी."

"अम्मा सिद्दीकी साहब बता रहे थे, कोई ऐसा आदमी तैयार करो, जो एक हजार की जमानत ले ले."

"तुझे मौत क्यों न आयी. मेरी पहली बहू तो साक्षात देवी थी."

"अम्मा यह सब बाद में हो जाई. पहले जमानत का परबंध कर लो." गुलाबदेई बोली, "बाद में चाहे मुझे जो सजा दिवाई देव."

गुलाबदेई ने बुढ़िया की बातों में समय नष्ट करना उचित न समझा. वह गली-मुहल्ले वालों से परामर्श कर लेना चाहती थी.

दिन भर की दौड़-धूप के बाद गलाबदेई के हाथ निराशा ही लगी थी, सिर्फ एक हजार रुपये की जमानत का इंतजाम न कर पा रही थी. हर आदमी अपनी असमर्थता प्रकट कर चुका था. मुहल्ले में जितने भी सम्मानित लोग रहते थे, सबने कोई-न-कोई बहाना बना लिया था. फारूकी साहब ने कहा कि वे सरकारी नौकर हैं, जमानत नहीं दे सकते. रुई वाली ने कहा कि वे लोग आज तक कचहरी नहीं गये. मलाईवाली ने कहा कि वह टैक्स नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती. सरकार उसे भी घर लेगी. एक प्रेसवाला था. बोला, मेरा तो सब कुछ कज का है. कर्ज देने से पहले बैंक ने लिखवा लिया था कि वह किसी की जमानत नहीं देगा.

गुलाबदेई को अपनी असली हैसियत का भास हो गया. उसे लगा, समाज में उसकी कोई स्थितिनहीं. शिवलाल के प्रति उसका मन बहुत आर्द्र हो आया.

आखिर गुलाबदेई को मास्टरजी का खयाल आया. मास्टर लक्ष्मीशंकर श्रीवास्तव जब भी चक्की पर आते थे, हमेशा आदर्शों की बातें करते थे. शिवलाल भी उनका बहुत आदर करता था.

शिवलाल बताया करता था—"मैंने मास्टरजी को अपनी आंखों से बूढ़े होते देखा है. डी. एम. साहब की गाड़ी उनके यहां खड़ी रहती थी. ट्यूशन करते थे उनके यहां, मगर शर्त रख दी थी कि आपकी गाड़ी ले आयेगी और छोड़ जायेगी. संतान भी ईश्वर ने बहुत समझदार दी. बड़ा लड़का फैक्ट्री में मैनेजर है और छोटे का अपना व्यापार है."

गुलाबदेई ने सोचा, क्यों न मास्टर साहब के सामने अपनी बिथा कहे. वह अंतिम ठौर मानकर मास्टर साहब के यहां गयी. मास्टर साहब बाहर चौंतरे पर बैठे एक किताब पढ़ रहे थे. गुलाबदेई को देखकर अपनी भवें नाक के केंद्र में लाते हुए बोले, "क्यों बहू, कैसे आयी हो?"

"एक तकलीफ देने आयी हूं. आशा है, आप निराश न करेंगे."

मास्टरजी कुर्सी से उठ गये. बोले, "अंदर आकर इत्मीनान से अपनी तकलीफ बताओ."

गुलाबदेई अंदर की तरफ चल दी. मास्टरजी अपनी छड़ी उठाये उसके पीछे-पीछे. उन्होंने गुलाबदेई की पीठ थपथपाते हुए कहा, "यहीं दालान में बैठते हैं. बैठक का तो ताला भी मुझसे न खुलेगा."

गुलाबदेई एक कुर्सी के पास नीचे ही जमीन पर बैठ गयी. मास्टरजी जिद करने लगे कि उसे मोढ़े पर ही बैठना चाहिए. उन्होंने गुलाबदेई को बांह से पकड़ा और उसे उठाने लगे, "हमारे यहां कोई भेद-भाव नहीं. सुहागिनें यों जमीन पर नहीं बैठतीं."

गुलाबदेई को लगा, जैसे लकड़ी के हाथ उसे छू रहे हैं. उसकी बांह पर झुरझुरी-सी हुई. मास्टरजी के अनुरोध को वहीं समाप्त करने के इरादे से वह तुरंत मोढ़े पर बैठ गयी. घबराहट में उसका पल्लू नीचे गिर गया.

मास्टरजी की निगाहों से ही उसे लगा कि पल्लू खास जगह पर नहीं है.

"देखो बेटे, हमेशा संभलकर बैठना चाहिए. अब ऐसा जमाना नहीं रहा कि आप अपने बदन के प्रति लापरवाह रहें." पकड़े जाने पर मास्टरजी ने कहा, "मैंने अपनी बहुओं को सख्त हिदायत कर रखी है कि वे बिना बाहों का ब्लाउज न पहनें. हमेशा सिर पर पल्लू रखें."

गुलाबदेई ने तुरंत सिर पल्लू से ढंक लिया.

"अब बताओ, क्या बात है." मास्टरजी ने छड़ी टांगों के बीच कर ली और उसकी मूंठ पर मुंह टिकाकर बोले, "शिवलाल के बारे में मालूम हुआ था. मैंने कभी नहीं सोचा था, वह चोरी-चमारी भी करता होगा. जो आदमी चोरी करेगा या चोरी का सामान खरीदेगा, उसे फिर उसके परिणाम भी भुगतने होंगे. मैं अक्सर देखा [illegible] था कि कोल्हू के बैल की तरह काम पर तो वह तुम्हें लगाये [illegible] था और खुद खटिया पर पड़ा रहता था. सच पूछो तो मैंने [illegible] उसे खटिया पर ही देखा. हो सकता है, उसे कोई रोग हो. वैसे [illegible] महज आलसी भी हो सकता है. इस आलस ने हमारे पूरे [illegible] को खोखला कर दिया, नहीं तो हमारा प्रदेश कितना [illegible] विश्व के अनेक देश, जनसंख्या, आकार व प्राकृतिक साधनों में [illegible] प्रदेश से छोटे हैं, मगर हमारे प्रदेश की आर्थिक दुर्दशा तुम दे[illegible] रही हो. . . . ."

मास्टरजी बोले जा रहे थे और गुलाबदेई ठगी-सी उन्हें सु[illegible] जा रही थी. वह मास्टरजी से प्रार्थना करना चाहती थी, पर उप[illegible] संबोधन उसे नहीं मिल रहा था. आखिर वह बोली, "बाबूजी, [illegible] गलती करते हैं और बड़े उन्हें मुआफ करते हैं और अब उ[illegible] रक्षा आप ही करेंगे."

"कौन किसकी रक्षा करता है!" मास्टरजी ने अपने दो[illegible] हाथ आसमान की तरफ उठाते हुए कहा, "कोई किसी की रक्षा [illegible] कर सकता. सब पूरब जन्मों का लेखा है."

गुलाबदेई को आशा नहीं थी कि मास्टरजी इस तरह ई[illegible] पर बात डालकर मुक्त हो जायेंगे. वह अनुनय करती हुई बो[illegible] "बाबूजी, नेताजी बता रहे थे, कोई जमानत ले ले तो वे बाहर [illegible] जायेंगे."

"मेरी मानो तो उसे कुछ रोज जेल की हवा खाने दो[illegible]" मास्टरजी ने कहा, "तुम्हारा भी कितना अपमान करता [illegible] चार दिन अंदर रहेगा, होश ठिकाने आ जायेंगे. मैंने उसे खुद दे[illegible] है तुम्हें डंडे से पीटते हुए. ऐसे राक्षस के लिए जेल ही ठीक जगह है."

गुलाबदेई रुंआसी हो गयी, बोली, "बाबूजी, है तो अपना [illegible] मर्द. औरत की तो हर तरफ दुर्दशा है. वह घर में नहीं हैं तो पूरा घ[illegible] काटने दौड़ता है. अपनी ही सांस से डर लगता है."

"तू नादान औरत है. बदतमीजी की सजा तुम तो उसे दे न[illegible] सकतीं और जब सरकार दे रही है तो तुम उसमें बाधा पहुंचा र[illegible] हो!"

गुलाबदेई ने देखा कि यहां दाल न गलेगी. वह निराश-हता[illegible] उठी तो मास्टर लक्ष्मीशंकर श्रीवास्तव भी उठ खड़े हुए. उठते ही [illegible] वे गिरते-गिरते बचे. गुलाबदेई का कंधा थामकर किसी तरह गिर[illegible] से बचे.

"यह बुढ़ापा भी नरक है." वे गुलाबदेई के कंधे पर अपना व[illegible] डालते हुए बोले, "दस मिनट भी नहीं बैठा कि टांग सो गयी."

मास्टरजी लंगड़ाते-लंगड़ाते गुलाबदेई के साथ चलने ल[illegible] दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते उनकी टांग ठीक हो गयी. गुलाबदेई की [illegible] कमर के नीचे थपथपाते हुए बोले, "तुम घबराओ नहीं, जरूरत प[illegible] तो मैं खुद जाकर शिवलाल को छुड़ा लाऊंगा."

गुलाबदेई ने पीछे मुड़कर भी न देखा. मास्टरजी को बिना [illegible] नमस्कार किये उदास कदमों से चक्की की तरफ चल दी.

क्रमशः

अगले अंक में

मिलिये हैदरी बी से. . .एक
विद्रोही चरित्र. . .एक अनूठा विद्रोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

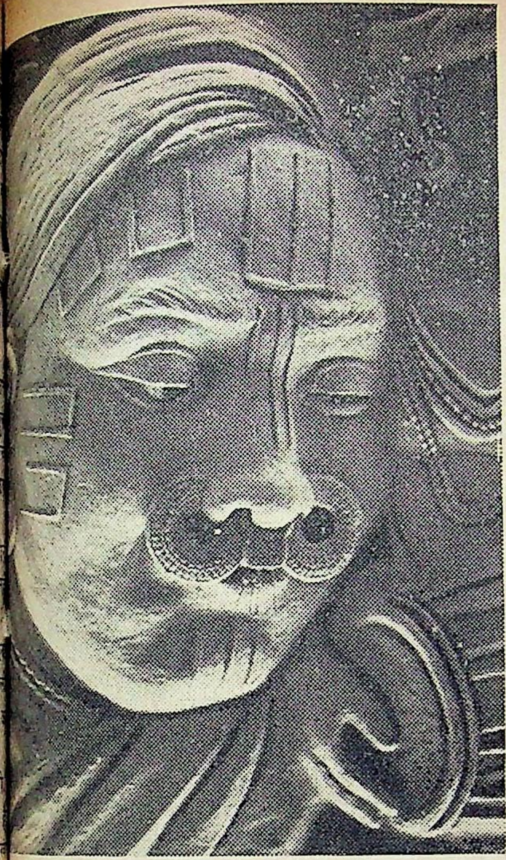

● आर. के. गोयल

...ना का गांव डबरू, दमकड़ी गांव के पिछवाड़े की गहरी ...ाई के पार वाली ऊंची चोटी की दूसरी तरफ, एक खुले ... छोटे मैदान में स्थित है. इस गांव में केवल तीन घर हैं. ...ही ओझा खानदान के. हर घर के पास अपनी जमीन है और ...के लिए अपना-अपना इलाका. दमकड़ी, पहरुआ और सुमेरू ...ओझाओं के अधिकार में हैं. ऊँ श्रीं ओझा का तांत्रिक नाम ...सली नाम है हनुमान स्वामी, लेकिन असली नाम की जान-...बहुत कम लोगों को है."

...चोटी को पार करते ही जब दिनेश, डॉ. दादा और मंगत के ...पेड़ों को पार करके खुले में दाखिल हुआ तो सामने का दृष्य ...कर स्तंभित रह गया. तीन घरों में से पहले घर के आंगन में ...गर्दन-कटी भेड़, पिछले पैरों से पेड़ के तने के साथ लटक रही ...उसकी गर्दन से, नीचे पड़े बर्तन में टप-टप खून टपक रहा था. ...और बकरियों की कुछ खालें, आंगन को चहारदीवारी की ...घेरने के लिए गाड़ी गयी आदमकद बल्लियों पर सूख रही थीं.

...दादा जो आगे-आगे चल रहे थे, एक क्षण के लिए ठिठके और ..."अभी-अभी कुछ मिनट पहले ही देवता को बलि दी गयी है."

"दिनेश को लगा जैसे उसका गला खुश्क हो गया है. फिर भी ...ने पूछ ही लिया, "बलि. . .? कैसी बलि?"

डॉ. दादा को दिनेश की नासमझी पर गुस्सा आ गया. ...आवाज में तल्खी भरकर उबले, "बलि कैसी होती है!"

दिनेश, डॉ. दादा की परेशानी को ताड़ गया और चुप्पी लगा ...

डॉ. दादा भी उसकी चुप्पी से निरामिष हो गये.

जब ओझा के घर का दृश्य कुछ कदमों पर रह गया तो दादा थोड़े-थोड़े शब्दों में दिनेश को समझाने लगे, "सामने देख रहे हो ना? इन तीन घरों में तीन तांत्रिक निवास करते हैं. महीने की पहली अमावस्या को इन तीनों घरों में देवता को अलग-अलग बलि समर्पित की जाती है और रात को सितारे जगमगाने के बाद विशेष पूजा होती है.

दिनेश ने दादा का कथन 'सत्य वचन है!' की तरह बिना किसी तर्क के शिरोधार्य कर लिया. दरअसल दिनेश के पास अब कुछ पूछकर उसका उत्तर पाने की स्थिति ही नहीं रही थी. बल्लियों को बीच से फाड़कर बनाया गया फाटक बिल्कुल सामने था, जिसकी बिरलों में से अंदर का दृश्य साफ नजर आ रहा था.

अभी वे तीनों कुछ क्षण ही खड़े हुए होंगे कि ओझा का एक अंगरक्षक बंदूक हाथ में लिये मकान के अंदर से बाहर आया और फाटक की तरफ बढ़ने लगा. शायद उन तीनों को उतराई उतरते देख वह बंदूक लेने अंदर चला गया था.

अंगरक्षक को प्रणाम करके डॉ. दादा ने पूछा, "ऊँ श्रीं जी हैं?"

अंगरक्षक ने पहचान की-सी मुस्कान चेहरे पर लाकर स्वीकारात्मक सिर हिला दिया.

"कहां हैं?" डॉ. दादा ने इधर-उधर झांककर दूसरा सवाल किया.

"पूजा में बैठे हैं!" बोलकर अंगरक्षक ने फाटक खोल दिया और आश्वस्त होकर अंदर लौट गया.

थोड़ी देर बाद, मरझाये सफेद फूल-सा चेहरा लिये एक बुढ़िया बाहर निकली. बुढ़िया को देखते ही डॉ. दादा और मंगत ने कमर से झुककर सलाम किया. दिनेश ने भी हाथ जोड़ दिये. बुढ़िया ने दादा को पहचानकर आशीर्वाद का हाथ उठाया और बांस के मोढ़ों पर बैठने का इशारा करके वापस लौट गयी.

ॐ श्रीं ह्रीं

• राकेश वत्स

तराई के जंगल, जंगल के आसपास बसे गांव, गांवों में आतंक और आतंक के पीछे का अंधविश्वास. अंधविश्वास का इलाज तंत्र-मंत्र और तांत्रिक ओझा. क्या आदमखोर सिर्फ जंगली जानवर ही होते हैं? फिर ये रायसाहब, सरपंच महाजन और तांत्रिक ओझा ऊँ श्रीं क्या हैं? प्रस्तुत है दीवाली की रात के अंधेरे में सिद्धि की होड़ में लगी हुई अघोरियों और तंत्रसाधकों की रहस्यमय दुनिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

▣ आलम 'खुरशीद'

मुट्ठी में धूल भर के हवा में उछाल दो.
तुम अपने इंतशार[1] की कोई मिसाल दो.

तनहाइयों में सांप न बनकर तुम्हें डसे,
दिल में छुपा है जो उसे बाहर निकाल दो.

ऐसा न हो खुद अपना गला घोंटना पड़े,
बदनाम ख्वाहिशों को न इतना उबाल दो.

मौजों की ताब लाओ गहराइयों में जाओ,
मोती जो चाहते हो समंदर खंगाल दो.

लहरों के इज़तराब[2] से सुनना कहानियां,
खामोश झील की तरफ पत्थर उछाल दो.

गोशे में इक ज़ेहन के हमेशा रहेगा वह,
ये और बात है, उसे बातों में टाल दो.

[1]इंतशार–तितर-बितर होना
[2]इज़तराब–बेचैनी, बेकरारी

दिनेश जब मोढ़े पर बैठा तो उसकी नजर मकान की बगल के एक और दृश्य पर जा पड़ी. काले पत्थरों की शिलाओं से बनी छत के नीचे लाल पत्थरों का एक मंदिर-सा बना था. मंदिर की दिखाई दे रही बगल की दीवार पर बहुत ही डरावने रंग-बिरंगे चित्रों के चेहरे चमक रहे थे. अपने अंगों को कई किस्म के गाढ़े रंगों से सजाये उन चेहरों के सामने ओझा समाधिस्थ बैठा था. मंदिर से थोड़ा हटकर, बंदूक को दोनों हाथों में मजबूती से पकड़े, बड़ी ही चौकस और समर्पित मुद्रा में दूसरा अंगरक्षक खड़ा था.

"पूजा की हालत में ओझा की जान को बड़ा खतरा होता है!" डॉ. दादा फुसफुसाती आवाज में दिनेश को समझाने लगे, "सुना है, अगर कोई आदमी पूजा करते हुए किसी ओझा की हत्या कर दे तो ओझा की सारी शक्ति और तमाम सिद्धियां हत्या करने वाले के हाथ में आ जाती हैं. इसलिए पूजा के वक्त ओझा की रक्षा के कड़े प्रबंध किये जाते हैं. देखा नहीं था, ओझा की पत्नी ओझन हमें पहचानने आयी थी. हमारे साथ तुम हो ना. परदेसियों पर ये लोग बिल्कुल भी विश्वास नहीं करते. इसीलिए थोड़ी घबराहट हुई होगी. समझ गये ना?"

दिनेश का ध्यान भंग हो गया, जब दो आदमी टंगी हुई भेड़ को खोलकर उतारने लगे. उताकर वे भेड़ को आंगन के कोने में बनी छोटी-सी झोंपड़ी में ले गये. फिर एक आदमी लौट आया और जिस कड़ाही में खून इकट्ठा किया गया था, उसे उठाकर मकान के बगल वाले कमरे में ले गये.

मंगत को पता नहीं क्या हुआ कि वह मुंह में आधी लार को गटककर बोला, "अब देउता का परसाद लोखरू बनेगा!"

सचमुच थोड़ी देर के बाद ही कमरे के अंदर से मादक [गंध] उठने लगी और मंगत उस गंध को नाक के जरिये ज्यादा से ज्यादा पेट में खींचने की कोशिश करने लगा, लेकिन इस बात का ध्यान रखकर कि सांस खींचने से कोई अभद्र आवाज न निकले.

इसी बीच ओझा समाधि तोड़कर आम हालत में आ [गया.] उसने सामने जल रही धूनी से धुआं छोड़ती लकड़ी उठायी, [और] सुलगते हुए सिरे से धरती पर एक षटकोण-सा बनाया और [तना] हुआ चेहरा लिये उन तीनों की तरफ मुड़ा.

ओझा को अपनी ओर आता देख डॉ. दादा और मंगत [खड़े] हो गये. ओझा के निकट आते ही उन्होंने ओझा का [विधिवत] आशीर्वाद लिया. दिनेश ने भी कर्त्तव्य पूरा किया. ओझा आशीर्वाद देकर बैठने का इशारा करके अंदर चला गया.

थोड़ी देर बाद एक सेवक ओझा के लिए बांस की बनी आ[राम] कुर्सी रख गया. जब ओझा आया, तो उसके चेहरे के रंग धुल [चुके] थे और उसने लाल चोगा पहन रखा था. सिर के बाल सु[लझ] जाने के लिए इधर-उधर बिखर गये थे.

ओझा ने बैठते ही, अपनी शायद नशे के कारण लाल [हुई] आंखें पूरी खोलकर दादा की ओर देखा. दादा उस देखने [का] अभिप्राय समझ गये और सिर झुकाकर बोले, "मास्टरजी आ[पके] दर्शन करना चाहते थे, इसलिए आपको बेवक्त जहमत दी है."

दिनेश का ख़याल था कि डॉ. दादा ही पूरी बात समझा [देंगे,] लेकिन जब उनकी टिप्पणी सुनकर ओझा की आंखें दिनेश की तर[फ] मुड़ीं तो दिनेश को ही बात साफ करनी पड़ी. वह निर्विलंब कु[र्सी] की हबड़ा-दबड़ी में खड़ा हो गया और बोला, "हम लोग [इस] इलाके की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लि[ए] एक जगह इकट्ठे हो रहे हैं, आपसे निवेदन करने आये हैं. आप हमारी इस मीटिंग में दर्शन दें."

सुनते ही ओझा की आंखें और भी चौड़ी हो गयीं. इस इला[के] में रायसाहब की इजाजत लिये बिना इस तरह का साहस करने [की] घटना उसके लिए बिल्कुल नयी थी. वे छूटते ही बोले, "[कैसी] समस्याएं?"

"यही, जंगल के आसपास के इलाके के लोगों के आम जीव[न] की समस्याएं!" दिनेश ने उतनी ही तेजी से जवाब दिया.

"हम लोग से मतलब?" ओझा ने दूसरा सवाल किया.

"सरपंच रामदासजी की पंचायत और इस संरक्षित [वन] के आसपास बसने वाले प्रायः सभी गांवों के लोग."

▣

सुनकर ओझा के माथे की त्योरियों की संख्या बढ़ गयी. उ[सने] दिनेश को बैठ जाने का इशारा किया और सिर के बालों को र[स्सी] की तरह बटा देकर जूड़े के रूप में समेटता हुआ कुछ सोचने [में] निमग्न हो गया. फिर सहसा मुंह में जो कुछ चबा रहा था, उस[को] थूक दायीं तरफ थूककर बोला, "रायसाहब से मिले?"

"जी नहीं, उनसे तो अभी नहीं मिल सके." दिनेश ने न[म्रता] से जवाब दिया.

"क्यों नहीं मिले? . . .इतना बड़ा कदम उनको मिले बिना ही!" ओझा मंदिर की दीवार पर बने चेहरों की तरफ घूरता हुआ कह[ने] लगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनेश के मन में आया कि कहे कि जिस दरिंदे के शोषण के खिलाफ राय तैयार करनी है, उससे मिलने और उसकी राय लेने का मतलब? लेकिन डॉ. दादा ने उसके चेहरे का भाव समझकर इशारा करके उसे चुप करा दिया. दादा ने बीच में पड़कर बिगड़ती बात संभाली, "अजी आपकी इजाजत के बिना उनसे कैसे मिल सकते थे?"

डॉ. दादा की बात सुनकर ओझा थोड़ा शांत हुआ. वह बांधे हुए बालों को खोलकर उंगलियों से सुलझाने लगा. जैसे-जैसे बाल सुलझते जा रहे थे, ओझा का चेहरा और भी भयावना होता जा रहा था और वह जुगाली करने की तरह मुंह में रखी कोई सुगंधित चीज चबाये जा रहा था.

इसी समय रसोई के अंदर से पहले वाले आदमियों में से एक निकला और बांस की बनी एक तिपाई चारों के बीच रखकर लौट गया. थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी आया और पत्तों के दोनों में खीर की तरह जमा हुआ, कत्थई रंग का लुखारू सबके सामने परोस गया. लुखारू को देखते ही मंगत के मुंह में फिर पानी भर आया. दिनेश को लगा जैसे लुखारू में से झुलसे हुए खून की गंध आ रही है. वह समझ गया कि अभी-अभी जो भेड़ का खून इकट्ठा किया गया था, यह उसी का बना हुआ पदार्थ है.

ओझा ने पदार्थ परस जाने पर आसमान की तरफ मुंह करके, दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और हाथ से सबको चालू हो जाने का इशारा करके खुद पदार्थ पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ा. उसने तीन-चार ग्रास में ही दोना खाली कर दिया. मंगतराम ने भी ओझा की तरह ही पदार्थ निगल लिया. पर डॉ. दादा उसे धीरे-धीरे खाते रहे. दिनेश ने उसे बिल्कुल भी नहीं छुआ.

ओझा ने भौंहें टेढ़ी करके दिनेश की तरफ देखा, जैसे पूछ रहा हो, देवता के इस प्रसाद का अनादर क्यों? दादा ने, 'मास्टरजी शुद्ध शाकाहारी हैं!' कहकर ओझा की भौंहें सीधी कर दीं.

ओझा का इशारा पाकर पास खड़ा परोसने वाला आदमी अंदर गया और पतले कागज जैसी दो चौड़ी-चौड़ी रोटियां और लाल रंग का प्रसाद लाकर दिनेश के सामने रखकर फिर पहले की तरह बाजू छाती पर समेटकर खड़ा हो गया.

डॉ. दादा ने दिनेश को समझाया, "चावल के आटे से बने पटांडे हैं और मकई के आटे से बना मीठा हलुआ. तुम इसे शुद्ध आहार समझकर बेझिझक खा सकते हो.

दिनेश ने पटांडे का टुकड़ा सब्जी की तरह प्रसाद के साथ मिलाकर मुंह में रखा तो वह उसे बुरा नहीं लगा. उसने बाकी के पटांडे भी खुशी से खा लिये.

आदमी ने वह कत्थई पदार्थ एक बार फिर ओझा, डॉ. दादा और मंगत को परोसा. तीसरी बार डॉ. दादा ने हाथ जोड़कर मना कर दिया. चौथी बार वह सिर्फ ओझा को ही परोसा गया. ओझा ने वह पदार्थ पांचवीं बार भी लिया. इसके बाद सबको बिना दूध की अदरक वाली चाय परोसी गयी. चाय के साथ एक-एक गुड़ का टुकड़ा भी.

चाय खत्म होते ही ओझा ने हुक्म सुनाया, "पहले रायसाहब से मिलो और जो वे हुक्म दें, मुझे बताओ. इसके बाद सोचेंगे कि समस्याएं क्या हैं." हुक्म सुनाते ही वह खड़ा हो गया और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये अंदर चला गया.

● राकेश वत्स

"आओ अब चलें!" बोलकर डॉ. दादा आगे-आगे हो लिये. अंगरक्षक की नजरें उनका काफी दूर तक पीछा करती रहीं. फिर पेड़ों का झुरमुट पार करते ही डबरू गांव आंखों से ओझल हो गया. लेकिन उसका सम्मोहन सब पर कायम रहा. ऐसा सम्मोहन जो दादा के शब्दों में सिर्फ जादू-टोने का ही हो सकता है, किसी दूसरी चीज का नहीं.

गहरी खाई की उतराई उतरते वक्त दिनेश को लगा जैसे पहाड़ की चोटियां और पेड़-पौधे उसके इर्द-गिर्द घूम रहे हैं. डॉ. दादा की भी आंखें चढ़ने लगीं और मंगत के भी पांव झूमने लगे.

डॉ. दादा समझ गये कि इस बार प्रसाद का प्रभाव बहुत जल्द शुरू हो गया है. उन्होंने सबको एक पेड़ की जड़ों पे रुक जाने के लिए कहा. रुकते ही मंगतराम खिलखिलाकर हंसने लगा. डॉ. दादा भी उसे हंसता देख आपे से बाहर होकर ठहाके मारने लगे. लेकिन दिनेश उनकी हरकतें देखकर गंभीर हो गया.

दिनेश को गंभीर देखकर डॉ. दादा ने हंसी ही हंसी में उसे समझाया, "इस बार देवता के प्रसाद में भांग बहुत ज्यादा तेज है. तुम्हारे प्रसाद में तो नाममात्र की होगी. थोड़ी देर यहीं विश्राम करना होगा. नशा थोड़ा कम होगा तब चलेंगे."

दिनेश समझ गया कि उसका उत्तरदायित्व बढ़ गया है. सचमुच में नशा अजीब था. डॉ. दादा और मंगत तो पहाड़ी बोली में चीख-चीखकर किसी को गालियां भी बकने लगे थे. दिनेश को लग रहा था जैसे पहाड़ों के घूमने के साथ-साथ पास ही कोई पनचक्की भी चल रही है, जिसकी आवाज ट्रैक्टर की आवाज की तरह सारी घाटी में गूंज रही है.

इसके बाद तीनों को गहरी नींद आ गयी. वह नींद तब जाकर टूटी जब सरपंच रामदास ने उन्हें जगाया. जागने के बाद सबने देखा—सूरज ढलने की तैयारी कर रहा था.

अब सब सरपंच के संरक्षण में गांव लौट रहे थे. सरपंच दिनेश को समझा रहा था, "ओझा का प्रसाद तो चखना चाहिए, क्योंकि उसमें परियां स्वर्ग से लाकर सोमरस डाल जाती हैं और इसका सेवन करने वाला आदमी इंद्र महाराज की सेवा में सीधा स्वर्ग पहुंचता है. □

● सरस्वती कॉलेज, अंबाला छावनी (हरियाणा)

यह रचना 'राजपाल एंड संस,' कश्मीरी गेट, दिल्ली—से राकेश वत्स के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'जंगल के आसपास' में समाहित है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

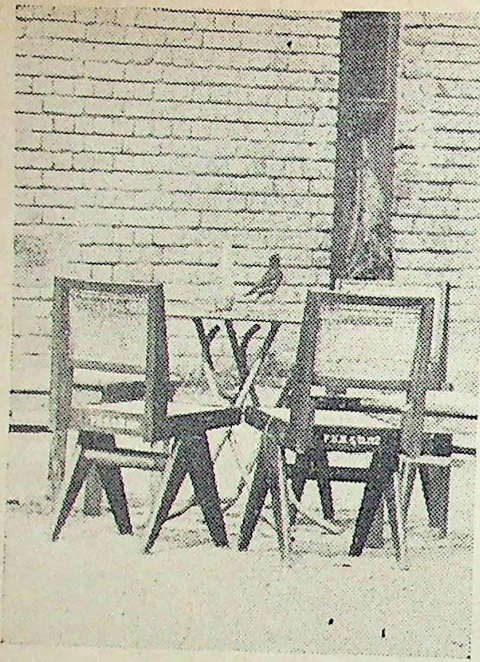

उस दिन बड़े साहब ने मुझे सहसा बुलाया और कहा कि बाबू लोगों की भर्ती के लिए तुम तुरंत जबलपुर चले जाओ. हमारा क्या था—हम तो जामवंत और हनुमान की किस्म के प्राणी हैं; जैसे ही सुग्रीव नामक राजा ने कहा कि लंका नाम की नगरी की दिशा में प्रस्थान करना है, वैसे ही लगे अटैची लगाने और बिस्तर बांधने. वैसे भी अपने इस जीवन काल में हम कभी जबलपुर नहीं गये थे और उस नगरी को देखने की उत्कट इच्छा थी, जहां एक ओर भेड़ाघाट है और दूसरी ओर हरिशंकर परसाई, प्रकृति और पुरुष—दोनों साथ साथ. हम तैयार हो गये और निश्चित तिथि को निश्चित समय पर निश्चित रेलगाड़ी को पकड़ने के लिए खड़े हो गये.

अपनी पुश्तैनी आदत के मुताबिक रेलगाड़ी जो थी, वह चलने के समय से कोई पांच मिनट पूर्व प्लेटफार्म पर लगायी गयी, हालांकि असलियत यह थी कि सारा दिन वह इसी स्टेशन पर यार्ड में खड़ी रहती थी. रेलवे के कर्मचारी शायद इतनी लंबी यात्रा पर निकलने वाली गाड़ी को ज्यादा से ज्यादा विश्राम देना चाहते थे. रेल पकड़ने की प्रक्रिया में खाकसार को सहसा महसूस हुआ कि खाकसार की पत्नी जो है, वह आज जरूरत से कुछ ज्यादा ही भावुक होती जा रही है. बात यह है कि इधर जब से रेल में दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ी है,

भरती: मेरा पहला अनुभव · रवींद्रनाथ त्यागी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नियां अपने पतियों को रेल से विदा करते समय काफी होती हैं. यह दुख उन पत्नियों को और भी अधिक होता है, की दूसरी शादी की तो उम्र नहीं रही और बच्चे जो हो गये से अलग. खाकसार की प्रियपत्नी इसी श्रेणी में आती थी. मैंने का हौसला बुलंद किया, पारिवारिक पेंशन, ग्रेचुटी और इंशो- की याद दिलायी और अंत में चलकर यह भी कहा कि अगर हो भी गया तो क्या––कोई वह अकेली थोड़ी ही होगी, जो वैधव्य का परम सुख लूटेगी; इस गाड़ी में बैठे जितने भी विभिन्न के पति हैं, उन सभी की विभिन्न किस्म की पत्नियां भी वैसा सुख लूटेंगी. इस तर्क से पत्नी का मनोबल अचानक बढ़ गया. जनकतनया सीता की परंपरा को ध्यान में रखते हुए जब उसने साथ चलने का आग्रह किया तो खाकसार ने जवाब दिया कि आर्यपुत्री, जैसा कि तू भलीभांति जानती है, सर्दी की ऋतु में पति है, जो पत्नी के साथ नहीं रहना चाहता? मुझे तो आश्चर्य होता है कि रामचंद्रजी को सीता के विरह में वर्षाऋतु में डर लगा था, (घन घमंड गरजत घन घोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा) क्योंकि प्रियाहीन होने पर डर लगने की जो ऋतु है, वह तो सर्दी की है, न कि वर्षा की. मगर इल्लत तो यह है कि हालांकि शादी के बाद हम कभी के एक हो चुके हैं, मगर रेलवे का यह नासमझ महकमा हमें अभी भी दो प्राणी ही गिनेगा और तुम्हारे टिकट पर बिना बात मुद्रा खर्च करनी पड़ेगी. सरकार के दौरे तो पैसा बचाने के लिए होते हैं, न कि खर्च करने के लिए. उसने मेरी बात मान ली और पत्नीरूपी उस मेरी पत्नी ने मुझे इस तरह विदा किया जैसे कि कभी राजपूताने की क्षत्राणियां जौहर पर प्रस्थान करते समय अपने पतिरूपी पतियों को दिया करती थीं. मैंने भी कुछ इस तरह विदा ली कि 'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं.'

मैं डिब्बे में बैठ गया और रेल की दुर्घटनाओं पर विचार करने लगा. सरकार की कितनी बड़ी कृपा है कि दुघटना का जो जोखिम पहले वायुयान से यात्रा करने वाले बड़े लोगों को ही होता था, वह अब रेल से चलने वाली देश की साधारण जनता को भी प्राप्त होने लगा. अब तो रेल की यात्रा वास्तव में रोमांचकारी हो गयी. कल की चिंता क्या करनी, शाम तक का भी पता नहीं कि यह डाक गाड़ी कहां अपनी पटरी से उतर जाये या कहां किसी दूसरी गाड़ी से इस प्रकार आलिंगन करने लगे, जैसे अरसे से बिछड़ी दो सखियां मिली हैं. बहुत संभव है कि कल हमारे नाम सारे अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर छपें, हमारे परिवारों को राष्ट्र के नेता सांत्वना दें और हम जो हैं, वे बगैर कुछ और किये मुफ्त में ही शहीद मान लिये जायें. और जब यह सोचा कि यह सारी सुविधा जो सरकार दे रही है, वह टिकट की दर बढ़ाये बिना ही दे रही है, तब मेरा मस्तक सरकार के प्रति श्रद्धा के कारण और भी झुक गया. यह जानकर भी संतोष हुआ कि लोग जो हैं, वे सरकार की कितनी चिंता करते हैं. जैसे ही एक वरिष्ठ मंत्री ने कहा कि रेल की फिशप्लेट नहीं उखाड़नी चाहिए, वैसे ही लोगों ने फिशप्लेट उखाड़नी तुरंत बंद कर दीं. फिशप्लेट उखाड़ने के बजाय वे लोग अब रेल की पटरियां ही काटने लगे.

मेरे साथ सदा से यह होता आया कि जब तक रेल प्लेटफार्म पर खड़ी रहती है, तब तक मैं व्यंग्यकार के रूप में जीवित रहता हूं और जैसे ही रेल खुल जाती है, मैं धीरे-धीरे कवि होने लगता

एक लड़की आयी, जिसे हिंदी साहित्य में बड़ी सच्ची रुचि थी. उसने बड़े आत्मविश्वास से सूचना दी कि अठारह सौ सत्तावन की क्रांति के नेता दो सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था राममोहन राय और दूसरे का था लाजपत राय. . . और समाज सुधारक जो थे, वे दो और सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था स्वामी दयानंद और दूसरे का था स्वामी विवेकानंद.

हूं. मेरा कवि जब चुक जाता है तब मैं या तो चिंतक बन जाता हूं, या दार्शनिक––ठीक वही स्थिति, जो पंडित सुमित्रानंदन पंत के साथ रही थी. जब तक गाड़ी प्लेटफार्म पर रहती है, मैं भी भीड़ से भरी गाड़ी में खिड़की के रास्ते घुसने वालों का संकल्प और पराक्रम और उसी मार्ग से बाहर निकलने वाले बूढ़ों और अपाहिजों की बेसब्री और डर पर दृष्टिपात करता हूं, कुली और यात्री के चिरंतन वाद-विवाद को सुनता हूं और अपने चारों ओर के परिवेश पर दो-चार अदद निगाहें डालता हूं, जहां व्यंग्यकार के लिए कच्चा माल क्या, जरूरत से ज्यादा पका माल चारों ओर बिखरा दिखाई देता है. टिकटचेकर का तृप्त, पर संशयपूर्ण चेहरा, भिखारियों और गंवई औरतों की लाचारी और तीसरे दर्जे के यात्रियों की बदहवासी––ये ऐसी चीजें हैं कि इन्हें अगर आप फर्स्ट क्लास के डिब्बे में से सिगार पीते हुए देखें तो कुछ और ही मजा देती हैं. इसके बाद गाड़ी जैसे ही विद्यापति की किसी गजगामिनी नायिका की भांति सीटी देती है और गार्ड साहब जैसे ही बांस के एक टुकड़े पर हरे रंग का एक कपड़ा बांधकर हिलाते हैं, रेल चलने लगती है और मेरा व्यंग्यकार जो होता है, वह बिना कोई नोटिस दिये कवि होने लगता है. ऐसा परिवर्तन होने में मुझे कोई विशेष कष्ट नहीं होता; यदि मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर को कवि स्वीकार किया जा सकता है तो मेरे विचार से हिंदी का कवि बनने से ज्यादा सरल तो कोई काम हो ही नहीं सकता. आउटर सिगनल के पार होते ही चारों ओर फैली धरती, धरती पर खड़े हुए कच्चे या पके खेत, खेतों के ऊपर उड़ते रंग बिरंगे पक्षी और पक्षियों के ऊपर तना नंगा या बादलों से घिरा आकाश––ये वे चीजें हैं, जिनके कारण मैं रेलवे की समय सारणी बंद कर देता हूं और मेघदूत की मंदाक्रांता में फिर खो जाता हूं. जब तक सांझ घिरती है, तब तक मेघदूत चलता है और जैसे ही सांझ घिरने लगती है, वैसे ही मैं जयदेव, विद्यापति और चंडीदास पर उतर आता हूं. इन कवियों ने सांझ की बेला में राधा और कृष्ण की प्रेमलीलाओं को लेकर जो कुछ लिखा है, उसे देखकर यह निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि इन सारे कवियों को रेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चलने का काफी अनुभव था. हां, अलबत्ता डिब्बे में यदि कोई खूबसूरत लड़की हो तो मैं भी विद्यापति को याद कर लेता हूं. भारतीय रेलों की भांति हमारे क्लासिकल कवियों का भी कोई जवाब नहीं. एक ओर डाकगाड़ी वाली गति और दूसरी ओर जहां चाहो, वहां उतनी देर रुक जाने की प्रतिमा. मेरे इस काव्यप्रेम में बाधा तब पड़ती है, जबकि रात को कपड़े बदलने पड़ते हैं. सरकस के जोकर की भांति ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सीट पर सोने के लिए चढ़ना पड़ता है और चलती गाड़ी में हजामत बनानी पड़ती है. ऊपर की सीट पर चढ़ने की प्रक्रिया में नीचे बैठी युवतियों के ऊपर गिरने की मुझमें इतनी प्रतिभा है कि थोड़ी देर बाद नीचे वाले लोग अपनी बर्थ मुझे काफी संतोष के साथ खुद ही दे देते हैं. हां, अलबत्ता इस हजामत का कोई इलाज नहीं. और मेरी दाढ़ी है कि इतनी तेजी से प्रगति करती है कि यदि उतनी तेजी से यह देश प्रगति करता तो पता नहीं कहां का कहां पहुंच जाता. हालत यह है कि यदि आज हजामत न बनाऊं तो कल जब जबलपुर में उतरूंगा तो भगवान रजनीश लगूंगा. अगर ऐसा हादसा हो गया तो बाबू लोगों की भर्ती कैसे होगी?

■

खैर, डाकगाड़ी जो थी, वह नहीं उलटी और मैं जबलपुर पहुंच ही गया. अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के नवयुवकों में से ही भर्ती करनी थी, हालांकि बेकार लोग उस क्षेत्र में और भी रहे होंगे. मध्यप्रदेश में प्रकृति ने इतनी संपदा दी है, सौंदर्य का इतना ऐश्वर्य बिखेरा है कि यदि वैसा पंजाब या हरियाणा में किया होता तो एक एक घर में दो-दो टेलीविजन सेट होते. मगर मध्यप्रदेश का पुरुष इतना निःसंग है कि प्रकृति के साथ कोई बलात्कार नहीं करना चाहता. चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियां, बीहड़ जंगल, कलकल करती नदियां, बीड़ी बनाते हुए मजदूर और इन सब के ऊपर हुआ अनंत आकाश. आकाश जितनी मात्रा में मैंने मध्यप्रदे पाया, इतना किसी और क्षेत्र में नहीं. तुम्हारी आंखों का आ खो गया मन का खग अनजान—वाली पंक्ति कविवर प निश्चयपूर्वक मध्यप्रदेश देखकर ही लिखी होगी.

भर्ती के लिए आये प्रत्याशियों की पहले लिखित प हुई और फिर मौखिक. हालांकि पर्चे मैंने काफी सरल रखे थे, फिर भी काफी युवक और युवतियां उन्हें ठीक उसी हालत में छोड़ गये, जिस हालत में वे उन्हें दिये गये थे. कापी का शो करना उन्होंने कदाचित उचित नहीं समझा. वैसे कुछ लोग भी थे, जिन्होंने इतना लिखा था और इतने जोरदार ढंग से लि था कि भविष्य में उनके जैनेंद्र कुमार या अज्ञेय बनने की प्र संभावना प्रकट होती थी. मूल प्रश्नों को छोड़कर बाकी सारी ची को इतना कसकर पकड़ा था जैसे कि कोई सांड किसी गाय पकड़ता है. स्पेलिंग की गलतियां इतनी मौलिक थीं कि क कहीं तो मुझे अपने ज्ञान पर ही संदेह होने लगा. कुछ लोगों ने अ लिपि को ब्राह्मी या पाली लिपि में लिखा था, जिसे केवल रा सांस्कृत्यायन ही पढ़ सकते थे. खैर, उत्तर देना उनका काम फेल करना मेरा. लिखित परीक्षा में जो लोग दुर्भाग्यवश उ हो गये, उन्हें अगले दिन इंटरव्यू के लिए बुलाया गया.

दांत निकलने के दिनों में यह बच्चे की सहायता करता है...

नौनिहाल ग्राइप सीरप

नौनिहाल ग्राइप सीरप दांत निकलने के दिनों के लिए विशेष रूप से बनाया गया है जो इन कठिन दिनों में आप के बच्चे की सहायता करता है। यह मसूड़ों की तकलीफ़, पेट दर्द, कब्ज़ और दस्तों की शिकायतों में आराम देता है, हाज़मा ठीक रखता है और भूख लगाता है। दांत निकलने के दिनों में बच्चे को सदा नौनिहाल ग्राइप सीरप दीजिए।

हमदर्द

नौनिहाल बेबी टॉनिक

बच्चों की भरपूर तन्दुरुस्ती और शक्ति के लिए नौनिहाल बेबी टॉनिक जिसमें विटामिन ए, सी, डी, बी कॉम्पलैक्स और चार खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं जिन पर आपके बच्चे की शारीरिक बढ़ोतरी और शक्ति निर्भर हैं। नौनिहाल बेबी टॉनिक से बच्चा मज़बूत और तन्दुरुस्त बनता है, चुस्त और हंसता खेलता रहता है।

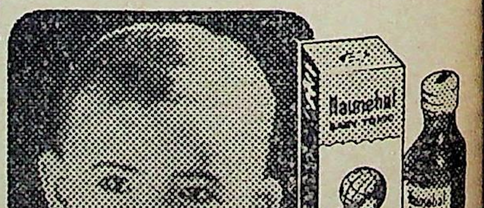

...और यह बच्चे की बढ़ोतरी के लिये.

HD-4974 H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंटरव्यू में मेरे अतिरिक्त दो अधिकारी और थे. प्रत्याशियों की अंग्रेजी बोलने की क्षमता का पता लगाने के लिए हमें उनसे हिंदी में ही बातचीत करनी पड़ी. कुछ लोग तो साधारण प्रतिभा के ही निकले और पास हो गये, पर बाकी लोग तो इतने मौलिक व प्रतिभावान साबित हुए कि उन्हें देखकर वाणी के पास नयन और नयनों के पास वाणी नहीं रही. भारतीय इतिहास के कई स्नातकों ने मुगलवंश की चर्चा करते हुए यही बताया कि जहांगीर जो था, वह शाहजहां का बेटा था और मुमताज महल जो थीं, वह चिरंजीव जहांगीर की अम्मीजान थीं. और हां, गरीब हुमायूं को तो कोई जानता ही नहीं था; सब ने एकमत से यही घोषित किया कि बाबर का जो लड़का था, वह अकबर था. हां, अलबत्ता एक साहब ने जरूर इस प्रसंग को एक नयी दिशा दी और सूचित किया कि बाबर के लड़के का नाम शेरशाह था. एक लड़की आयी, जिसे हिंदी साहित्य में बड़ी सच्ची रुचि थी. गुलशन नंदा के सारे उपन्यासों के नाम उसे जबानी याद थे. इतिहास में भी उसकी गति थी और उसने बड़े ही आत्मविश्वास से हमें सूचना दी कि अठारह सौ सत्तावन की क्रांति के नेता दो सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था राममोहन राय और दूसरे भाई का नाम था लाजपतराय. जब मैंने कुछ दबी जबान में कहा कि राममोहन राय तो संभवतः एक समाज सुधारक थे जिन्होंने सती प्रथा को बंद करने में तत्कालीन वायसराय की मदद की थी तो उसने तपाक से उत्तर दिया कि मैं गलती कर रहा हूं और समाज सुधारक जो थे, वे दो और सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था स्वामी दयानंद और दूसरे का था स्वामी विवेकानंद. इस उत्तर के सामने हम लोग निरुत्तर हो गये. उस बालिका के फेल होने का मुझे हार्दिक अफसोस रहा, क्योंकि वैसे वह काफी शोख और हसीन थी—ठीक उस किस्म की लड़की, जिसके कारण कभी सरकारी दफ्तरों में ओवरटाइम काम करने की प्रथा का सूत्रपात हुआ होगा. मगर हम लोग क्या करते, हम ऐसा कोई प्रश्न पूछ ही नहीं सके, जिसका वह सही उत्तर दे सकती. इसके बाद एक अंग्रेजी के विशेषज्ञ आये, जो कवि ईलियट को ईडियट पुकारते थे.

उन्होंने शेक्सपीयर को सेक्सपीयर कहकर पुकारा और यह भी बताया कि वे सैक्सी उपन्यास लिखने में लाजवाब थे. इन सज्जन के अनुसार सर वाल्टर स्कॉट ने दक्षिणी ध्रुव की यात्रा की थी और जो बर्नार्ड शॉ जो थे, वे जार्ज पंचम के छोटे भाई थे. मैंने किसी प्रसंग में गलती से ओलिवर गोल्डस्मिथ का नाम ले लिया तो इन्होंने हमें सूचित किया कि वे जाति से स्वर्णकार थे, जैसा कि उनके नाम से भी जाहिर है. इन महान आत्माओं के उत्तर सुनकर मेरे साथियों में से एक हत्या करने की सोचने लगा और दूसरा आत्महत्या करने की. मैंने इंटरव्यू वहीं समाप्त कर दिया. एक विज्ञान के ग्रेजुएट चलते-चलते इतना और बता गये कि ग्रेविटेशन एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था और उसने न्यूटन नामक सिद्धांत की खोज की थी.

सफल प्रत्याशियों की सूची बनाने और उसे सील बंद करने के बाद हम लोगों ने चाय पी और पान खाये. बातचीत के दौरान पता चला कि इस क्षेत्र में आधा वर्ष अध्यापक हड़ताल पर रहते हैं और आधा वर्ष छात्र लोग. शिक्षा का माध्यम हिंदी है और अंग्रेजी साहित्य भी इसी माध्यम से पढ़ाया जाता है. हिंदी का लेखक होने के नाते मुझे यह सुनकर हर्ष हुआ, मगर मैं इस केंद्रीय सरकार का क्या करूं,

● रवींद्रनाथ त्यागी

जो अभी भी अपने काम-काज के लिए अंग्रेजी ही जरूरी समझती है? और वह भी इन अनुसूचित जातियों से, जिन्हें सदियों तक सारे देश ने दबाये रखा? और फिर इनमें से काफी लड़के ऐसे थे, जिनके बाप कुलीगिरी करते थे या जो खुद दिन भर बोझा ढोते थे और रात का कालेज अटेंड करके किसी तरह हम तक पहुंचे थे. उनके पता नहीं क्या क्या अरमान रहे होंगे, मगर मैं उनके लिए कुछ नहीं कर सका. मैं मजबूर था और उस लड़की के साथ क्या करता, जो हजार बार बाबर को शेरशाह का सगा बाप बताती रही? वह तो अच्छा रहा कि सर जदुनाथ सरकार वहां नहीं थे. वे होते तो उन्हें दिल का दौरा पड़ जाता और इंटरव्यू छोड़कर पहले उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ता.

मैं उदास हो गया. पहले कवि होने की स्थिति रही और फिर चिंतक और दार्शनिक होने की. कायर लोग हमेशा कवि या दार्शनिक ही होते आये हैं. 'वियोगी होगा पहला कवि' वाली बात में मैं यकीन नहीं करता. मेरे विचार में पहला कवि वह कायर था, जो न तो मुसम्मात को ही भगा सकता था और न उसके बाप के साथ फौजदारी ही कर सकता था. बहरहाल, उदासी दूर करने के लिए हम भेड़ाघाट और धुंआधार देखने गये. पानी जो था, वह काफी ऊंचाई से और काफी तबीयत के साथ पतित हो रहा था, जिसे देखकर मेरा दुख और भी बढ़ गया. मैं किसी को पतित होते नहीं देख सकता, चाहे वह पानी ही क्यों न हों. मैं अभी तक ऐसे झरने की तलाश में हूं, जिसमें गिरने की बजाय पानी ऊपर जाता हो. खैर, उसके बाद मैं परसाईजी के पास गया, मगर वहां भी उदासी जो थी, वह और गहरी हो गयी. इतने बड़े कलाकार ने इस बार अपनी टांग बिना किसी बाहरी सहायता के खुद ही तोड़ रखी थी और हालत यह थी कि बेचारे छड़ी के सहारे चलते थे. मैं यहां भी कुछ नहीं कर सकता था. टूटी टांग, टूटे दिल से कहीं ज्यादा तकलीफ देती है. परसाईजी शायद मुझसे सहमत होंगे. उन्हें टूटी टांग का अनुभव है तो मुझे टूटे हुए दिल का.

संध्या समय नगर के साहित्य प्रेमियों ने मेरे सम्मान में एक आयोजन किया. टूटी हुई टांग के बावजूद परसाईजी सभा का सभापतित्व करने का लोभ संवरण नहीं कर सके. अपने भाषण में उन्होंने कुछ मामलों में मुझे अपने से बेहतर कलाकार बताया. ईमानदार आदमी हैं, सच ही कह रहे होंगे. मेरे कंठ में फूलमालाएं पड़ीं, फोटो खिंचे, मेरी कविताएं सुनी गयीं और अगले दिन रेडियो पर मेरा एक लंबा इंटरव्यू भी टेप हुआ. नतीजा यह रहा कि मेरी सारी उदासी एकदम दूर हो गयी. यशःप्रार्थी कवि जो था, वह उन सारे गरीब बेसहारा लोगों को भूल गया, जो हजार मुसीबतों के बाद भी नौकरी में नहीं लिये जा सके थे. □

● सी. डी. ए. (वायुसेना) 107 राजपुर रोड, देहरादून.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

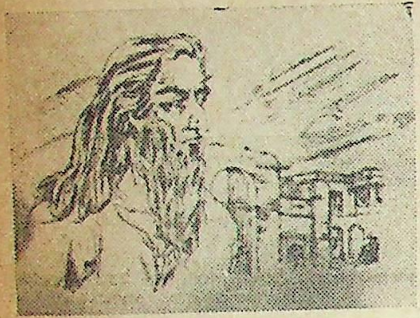

● मौलवी अहमदुल्लाह

जब 1857 की हवा चली तो उनके नारे बदल गये. फरवरी, 1857 में मौलवी अहमदुल्लाह अब हिंदू और मुसलमानों को संगठित करके अंग्रेजों के विरुद्ध व्याख्यान देते फिरते. और फिर एक दिन वह घेर लिये गये.

भैरव के कुछ गणों की भांति 8 जून को फैजाबाद के सिपाही अंग्रेजों का संहार करने में जुट गये. उसी रात कारागार पर भी आक्रमण किया और मौलवी साहब को फिर से खुले वातावरण में ले आये.

मौलवी अहमदुल्लाह ने किसी से युद्ध

रणभूमि की शतरंज-क्षमता देख-देख अंग्रेज थर्रा उठे थे. गवर्नर जनर ने उनके सिर की कीमत पचास हज रुपये रखी थी--जिंदा या मुर्दा!

जब वे लखनऊ पहुंचे तो वहां बेग हज़रत महल के नेतृत्व में घिसा-पि क्रांति-नाटक हो रहा था. दूरदर्शी मौल साहब ने लखनऊ के उन बांके योद्धा को उनकी कमजोरियां बतलायीं.

उनके मशविरे को अधकचरे लखन नेताओं ने 'टांग अड़ाना' समझा. परिण यह हुआ कि पहले-पहल तो बेगम हज

अवध के चमन का दीदावर

▣ बाला दु

"डंका शाह! दि मौलवी!"... फैजाबाद के इस मौलवी का नाम सुनते ही अंग्रेज कांप उठते थे. मौलवी अहमदुल्लाह जब चलते तो लगता मानो किसी दैवी शक्ति से कोई मुर्दा अति गंभीर मुद्रा में चल पड़ा हो. एक अजीब ठंडापन-सा उनके व्यक्तित्व से टपकता.

1857 के स्वाधीनता संग्राम से पहले वे लखनऊ की गलियों से अपने शिष्यों के झुंड के साथ गुजरते. आगे डंका बजता चलता. तभी से वह 'डंका शाह' हो गये.

जब आयोध्या की हनुमानगढ़ी के पास दंगों में मौलवी अमीर अली मारे गये थे, तब मौलवी अहमदुल्लाह लखनऊ से फैजाबाद आये थे. उन्हें धर्मोन्मत्त समझकर ही फैजाबाद के जिला अधिकारी ने गिरफ्तार किया था. वैसे वह आसानी से गिरफ्तार नहीं हुए थे. स्वयं घायल हो गये थे और दो साथी मारे गये थे.

की दीक्षा नहीं ली थी. युद्ध में वे केवल निर्देशक का अभिनय ही नहीं करते थे वरन सबसे आगे की पंक्ति में तलवार निकाले दिखाई पड़ते. वे कदाचित जानते थे कि अंग्रेजों की फैक्टरी में उनके लिए गोली बन नहीं पायी थी.

अपने स्वतंत्रता संग्रामी दल को लेकर वे लखनऊ की ओर चल पड़े थे. चिनहट पर आकर उनकी तलवार का पानी अंग्रेजों ने सबसे पहले देखा था. चिनहट विजय करके मौलवी साहब ने वहां पर पुलिस चौकियां बना दीं, और वे रेजीडेंसी पर टूट पड़े. कई भीषण आक्रमण उन्होंने अपने नेतृत्व में किये थे. एक बार तो वे 'बेली गारद' के फाटक तक भी पहुंच गये थे, पर घायल होने पर उन्हें वापस लाना पड़ा.

युद्धशास्त्र का एक उसूल है कि वीर वही है, जिसकी शत्रु भी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर उठे! मौलवी अहमदुल्लाह की

महल ने उन्हें अपना विश्वसनीय हितैषी मित्र माना. फिर उन्हें मौल साहब की बढ़ती लोकप्रियता खटकने ल तभी शायद मम्मू खां और शर्फुद्दौला उनका प्रतिद्वंद्वी बनाकर खड़ा किया यहां तक कि मौलवी साहब और बे के सिपाहियों में युद्ध भी हुआ.

जब लखनऊ का रक्षा-संग्राम हुआ आलमबाग के युद्ध में मौलवी अहमदुल ने आउटरम के दांत खट्टे कर दिये नवंबर, 1857 से लेकर फरवरी, 18 तक उन्होंने अंग्रेजों को आगे नहीं दिया. जब लखनऊ अंग्रेजों के हाथ आ तब भी मौलवी साहब अपनी सेना सहि लखनऊ में ही डटे रहे. उनका यह 'अद हठ' देखकर अंग्रेज वाह-वाह कर तीन महीने पश्चात उन्होंने महोना की लखनऊ से 25 मील दूर स्थित बारी अपना हैडक्वार्टर बना लिया. होम ने 3000 सिपाहियों और 18 लेकर बारी की गढ़ी पर आक्रमण था. मौलवी साहब ने देखते ही अपनी सेना हटाकर ग्रांट के बगली को दबोचना चाहा किंतु तभी की '7 वीं हुसर्स' पल्टन ने आकर उन आक्रमण कर दिया. तब मौलवी साहब वे बारी छोड़कर सर कालिज कैंबल से लेने रोहिखंड की तरफ बढ़ चले.

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे--वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त : 80, अंक 2 से प्रारंभ इस श्रृंखला में इस बार प्रस्तुत है--मौलवी अहमदुल्लाह की कथा, जिसने अंग्रेजों को छटी का दूध याद दिलवा दिया--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर कालिन कैंबल का ध्येय बरेली था—सरदार खान बहादुर खां की मांद! मौलवी साहब ने कैंबल की चाल को फौरन भांप लिया और वे बिठूर के नाना साहब की सेना और अपनी सेना को लेकर शाहजहांपुर आ डटे. उनका ध्येय कैंबल की सेना के कारवां और रसद की दुम काट देना था. वे शाहजहांपुर से हटते समय वहां के मकान और अतिरिक्त सामान के ऊपर छतों का विनाश करते गये, ताकि कैंबल के थके-मांदे योद्धा आराम न टिक पायें. टूटे-फूटे शाहजहांपुर में ब्रिगेडियर हेल के नेतृत्व में छोटी-सी सेना छोड़कर सर कोलिन कैंबल फतहगढ़ के पास स्थित तिलहोर की ओर लपका.

जबरदस्त दुश्मन!

शाहजहांपुर को उजड़ा देख, उन्होंने वहां के जेलखाने पर काबू कर लिया, जैसे ही कैंबल अपनी बाकी की बड़ी सेना लेकर शाहजहांपुर से निकला कि मौलवी अहमदुल्लाह अपनी तोपें, रिसाला और पैदल योद्धा लेकर मधु-मक्खियों की भांति हेल पर टूट पड़े. सर कालिन को आखिर अपने इस अद्भुत शत्रु की प्रशंसा करनी ही पड़ी—"ये दुष्ट मौलवी! बहुत ही कांइया. . .कितना कुशल है यह!" हेल को शाहजहांपुर बड़ा महंगा पड़ा.

जब सर कालिन कैंबल मई, 1857 में बरेली की मुठभेड़ में उलझ गया तो मौलवी अहमदुल्लाह ने शाहजहांपुर पर लौटकर आक्रमण कर दिया. उन्होंने किला छीन लिया और नगर के महत्वपूर्ण स्थान हथिया लिये. उनकी तोपें किले की चारों ओर मुंह खोले डकराने लगीं. वह तो अंग्रेजों के भाग्य से ब्रिगेडियर जोंस सेना लेकर शाहजहांपुर आ गया. वरना हेल की समाधि शाहजहांपुर में बन गयी होती. ब्रिगेडियर जोंस से युद्ध हारने पर भी मौलवी अहमदुल्लाह अपने 5000 सवार और आठ-नौ तोपों को लेकर शाहजहांपुर के इर्द-गिर्द चील की तरह मंडराते रहे. स्थिति को देखकर सर कालिन और ब्रिगेडियर जोंस ने मौलवी साहब की सेना पर दोतरफा आक्रमण कर दिया. मौलवी अहमदुल्लाह अपनी सेना को चक्रव्यूह से बाहर निकालकर मुहम्मदी आ जमे. मुहम्मदी के ईंटों के किले में वे 15 तोपें जमाकर बैठ गये और फिर बाहर के क्षेत्र में उनका आतंक फैल गया. जिन्होंने अंग्रेजों की सहायता की थी उनसे निबटते रहे. बिजली की भांति बढ़कर उन्होंने पाली नामक स्थान पर अधिकार कर लिया और विजयपुरा से आठ मील दूर मूरिया नामक स्थान पर डट गये.

मौलवी की सधी चालों ने अंग्रेजों को विचलित कर दिया. होम्स ने 'हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन म्यूटिनी' में मौलवी अहमदुल्लाह को 'उत्तर भारत में अंग्रेजों का सबसे जबरदस्त शत्रु' बतलाया है. मैलेसन का अनुमान है कि कारतूस पर चर्बी लगाने का भेद मौलवी अहमदुल्लाह को पता लगा तो उन्होंने पहले से ही भड़के सिपाहियों को इतने जोशीले भाषण दिये कि वे खून के प्यासे बन बैठे. मैलेसन का विचार है कि चपाती बांटने का सिलसिला भी मौलवी साहब की सूझ-बूझ थी.

मौलवी किसी भी तरह से अंग्रेजों के चुंगल में नहीं फंस सके. शाहजहांपुर से निकलकर वे रुहेलखंड में जा घुसे और वहीं से घूमकर वापस अवध में तहलका मचाने लगे. युद्ध पद्धति के अनुसार उन्होंने दो बार सर कालिन कैंबल जैसे युद्ध शास्त्री को करारी हार दी थी.

मौलवी अहमदुल्लाह जब अवध में लौटकर घुस रहे थे तब वे मार्ग में स्थित पवन नामक छोटी-सी हिंदू रियासत की ओर बढ़े. पवन राजा जगन्नाथ सिंह अंग्रेजों के खैरख्वाह थे. मौलवी के पास बेगम हज़रतमहल की मोहर लगा परवाना भी था, जिसमें राजा साहब को उनकी सहायता करने को आदेश दिये थे. मौलवी साहब दो सौ सवारों के साथ हाथी पर बैठकर राजा साहब की गढ़ी की ओर चल दिये. जब उनकी बात राजा साहब ने नहीं सुनी, तो उन्होंने हाथी को किले के फाटक तोड़ने को आगे बढ़ाया.

"भारत में अंग्रेजी राज' में सुंदरलाल लिखते हैं कि राजा जगन्नाथ सिंह जिस

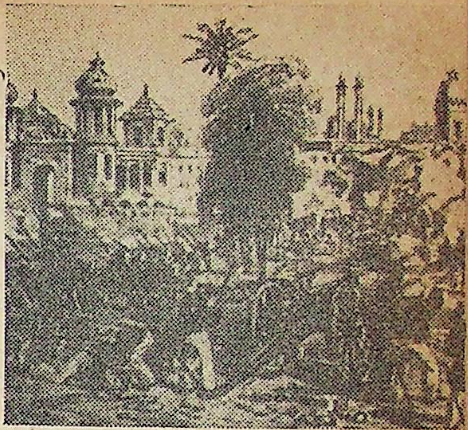

लखनऊ : 1857

समय मौलवी साहब से बातें कर रहे थे उस समय उनके भाई बलदेव सिंह ने धोखे से उन पर गोली चला दी.

इसके विपरीत श्री एस. एन. चंदा लिखते हैं कि मौलवी साहब ने राजा जगन्नाथ सिंह से थानेदार और तहसीलदार को उनके हवाले करने को कहा, जिसको राजा साहब ने अस्वीकार कर दिया. जब मौलवी साहब ने किले का दरवाजा तोड़ने को हाथी बढ़ाया तो राजा साहब ने 'मरो मारो' चलवा दी जिसके फलस्वरूप मौलवी साहब और उनके दो आदमी वहीं मर गये. बलदेव सिंह ने आगे बढ़कर मौलवी साहब का सिर काट लिया और खून टपकता सिर कपड़े में लपेटकर जिला अधिकारी के यहां ले गये. बलदेव सिंह को पचास हजार रुपये का पुरस्कार दिया गया.

5 जून, 1858 को अवध के सबसे योग्य युद्ध शास्त्री मौलवी अहमदुल्लाह शाह का अंत हो गया. उनके कटे सिर को कोतवाली पर लटकाया गया और शरीर जनता के सम्मुख जलाया गया और उनकी राख नदी में फेंक दी गयी. एक अंग्रेज लेखक ने सहानुभूति प्रकट करते हुए दुख प्रकट किया है. . .**'यह कर्मगति का अभिशाप नहीं तो क्या है कि बजाय अपने शत्रु द्वारा मारे जाने के वह भारत का वीर देश भक्त... अपने ही देशवासियों के हाथों मारा गया, जिनकी उसने कितनी सेवा की थी!'** □

अगले अंक में

पर नारी पैनी छुरी

शाहजहाँ और उसकी बेटी जहांआरा की मिलीभगत की एय्याशियों का कच्चा चिट्ठा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रहीन होना कोई दुर्भाग्य नहीं, लेकिन दृष्टिहीन होना दुर्भाग्य है!...काकभुशुंडि गरुड़-संवाद का एक अधुनातन अध्याय-

तम तोम का नाश उर्फ भीड़कास्य

• उमाकांत मालवीय

"इस प्रकार मैंने तुम्हें महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की कथा सुनायी. अब मैं तुम्हें और क्या बतलाऊं, निःसंकोच पूछ सकते हो." वैनतेय से काकभुशुंडि बोले.

"प्रभु, आपकी बड़ी कृपा, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों तो हम यह जानना चाहेंगे कि पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण महान सत्यवादी महात्मा सुकरात को विषपान करना पड़ा और महामति महान वैज्ञानिक गैलीलियो को अपना कथन वापस लेना पड़ा, जो कि काल कूट पान से भी अधिक त्रासद, दुखद और अपमानजनक है. हमें यही बतलाया गया है कि आज हमें जो कुछ भी मिलता है, वह हमारे पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का फल ही होता है." हाथ जोड़कर वैनतेय ने पूछा.

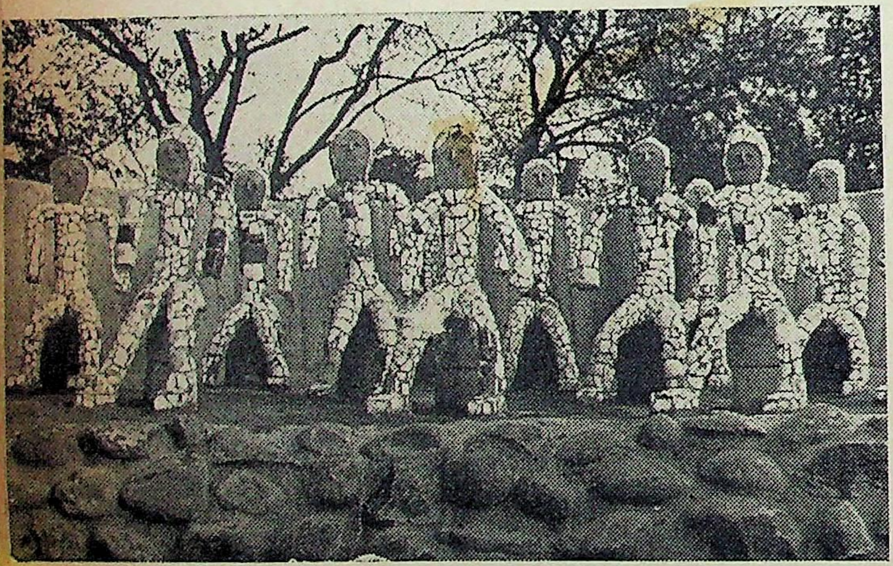

● स्वदेश कुमार

काकभुशुंडि और गंभीर हो गये, उनके चेहरे पर विषाद की गहरी रेखाएं उभर आयीं, एक क्षण को लगा जैसे उनका सारा स्याह चेहरा एकबारगी सफेद पड़ गया, "पन्नगारि, सत्य के ध्वजावाहियों को यह मूल्य देना ही पड़ता है, यही उनकी शाश्वत परिणति है." गरुड़ से काकभुशुंडि ने कहा और उनकी दृष्टि क्षितिज में कुछ खोजने के प्रयास में दूर कहीं खो गयी, वह अपनी सहज काक-चेष्टा भी भूल गये.

काकभुशुंडि बोले, "आप धन्य हैं गरुड़, आपने लोकहित में यह जिज्ञासा व्यक्त की है. जो नर इस कथा को ध्यानपूर्वक सुनेंगे, गुनेंगे, [illegible]तन और मनन करेंगे, उनका आत्मानुभूत सत्य भीड़ के ढिंढोरची स[illegible]य में कभी पराभूत नहीं होगा. एक बार इसी तरह पार्वती ने देवाधिदेव महादेव से यही प्रश्न किया था. भगवान शिव ने उनके प्रश्न का जो उत्तर दिया था, जो पुनीत कथा सुनायी थी, वही इस समय मैं तुम्हें सुनाऊंगा—भगवान आशुतोष की समाधि तनिक शिथिल हुई, निमीलित नेत्रों के समक्ष अर्चना अर्घ्य को प्रस्तुत देवी पार्वती की छवि उपस्थित थी. भगवान ने मन[ही] मन अर्घ्य स्वीकार किया. मंद-मंद बयार डोल रही थी, त्रिविध-ताप नसावनी भगवान शिव की उस परम प्रसन्न मूर्ति को माता ने वारम्वार अपनी विनम्र प्रणति दी. अवढरदानी किंचित् मुसकराये, "देवि, तुम्हारे नेत्रों में कोई पूत जिज्ञासा झिलमिला रही है. कहो, क्या जानना चाहती हो? निःसंकोच होकर पूछो."

"प्रभो! महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की कथा सुनाने के उपरांत ही आप समाधिस्थ हो गये थे, आप यदि प्रसन्न हों तो कृपापूर्वक यह बतलायें कि पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण उन्हें यह दारुण परिणति झेलनी पड़ी?" माता पार्वती ने हाथ जोड़कर पूछा.

"शोभने! महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की आत्मा एक ही है. इन्हें मुक्ति मिलनी थी तथापि इन्होंने जनम जनम के लिए ऐसी ही परिणतियां स्वेच्छा से मांग ली हैं. देवि, तुम धन्य हो, तुम सर्वज्ञ हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अज्ञेय नहीं है, तथापि लोकहित में तुम लोकमंगलकारी जिज्ञासाएं प्रस्तुत करती रहती हो. जो प्राणी महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो के पूर्वजन्म के वृत्तांत को ध्यान पूर्वक सुनेंगे तथा अपने इष्ट मित्रों, आत्मीय स्वजनों को श्रद्धापूर्वक सुनायेंगे वे भीड़ की मानसिकता से कभी आक्रांत नहीं होंगे, वे स्वयं अपने विवेक से परिचालित होंगे. इन दोनों के पूर्वजन्म का उपाख्यान तुम्हें सुना रहा हूं. ध्यान से सुनना. इस कथा को सुनने वाला अपने आत्मानुभूत सत्य को भीड़तंत्र के सामने आत्मसमर्पण नहीं करता.

कृत-युग की बात है, लंबी उड़ान की यात्रा से श्लथ-शिथिल विवेकगिरि नाम का एक हंस, एक अश्वत्थ वृक्ष की एक शाखा पर विश्राम करने के लिए उतरा. वह अश्वत्थ वृक्ष, जिसे वासुदेव भी कहा जाता है, जिस वन में था, दंडकारण्य कहलाता था. इसका विस्तार चौबीस योजन था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष का मध्यान्ह; पंचमी सूर्य तप रहा था. मानसरोवर निवासी आतप से विकल होकर बोला, "उफ! कितना तेज प्रकाश है? सूर्य पूरी पराकाष्ठा चमक रहा है, चकाचौंध कर देने वाला उजलापन, पारदी धवलिमा, यह असह्य है."

उसी अश्वत्थ पर, एक टहनी से तिमिर नाम का एक चमगादड़ शीर्षासन की में लटका हुआ था, हंस विवेकगिरि बात सुनकर वह बड़बड़ाया, "कौन हो स्याह को सफेद कर रहे हो."

"महाभाग, आप कौन हैं? आपका शुभ परिचय?" विवेकगिरि ने पूछा.

"तुम मुझको नहीं जानते? यह तुम्हारा दुर्भाग्य है. मुझे तिमिर तनय कहते हैं, मैं तपस्वी हूं, देखते नहीं हो, शीर्षासन में लटका मैं तपश्चर्या में रत हूं. यह डाली, जिससे मैं लटका हुआ हूं, यही मेरा तीर्थ है. हां, तो तुम किस सूरज की बात कर रहे हो?"

"अरे वही, जो चतुर्दिक फैला है."

"हमारे चतुर्दिक तो सांवला-सलोना अंधकार फैला हुआ है."

"अरे भाई, यह सूर्य निकला हुआ है. यह दम मध्यान्ह, इसकी ऊष्मा, इसका उजाला, क्या कुछ तुम्हें समझ में नहीं आता?" विवेकगिरि ने कहा.

"हाः हाः हाः! यह हमें मूर्ख समझता है. अरे भाई विरुपाक्ष, सुनयन, कहां हो तुम सब? अरे भाई सुनो, यह सूर्य नामक किसी बाबाजी का नाम ले रहा है." तिमिर तनय चमगादड़ ने अपने भाई-बिरादर चमगादड़ों को आवाज दी, सभी एकत्र हो गये. चमगादड़ों ने उलूकों को आवाज दी. उनकी चहल-पहल से उलूकजन भी एकत्र होने लगे.

"क्यों भई सूरज है?" तनय ने पूछा.

"नहीं है, नहीं है." भीड़ उत्तर.

"क्यों भाई, उजाला है?"

"नहीं, कतई नहीं." भीड़ का उत्तर

"क्यों भाई सूरज है?" तिमिर तनय ने विवेकगिरि से पूछा.

"हाथ कंगन को आरसी क्या? सूरज है." विवेकगिरि के उत्तर पर भीड़ का सामूहिक ठहाका उभरा.

"क्यों भाई, उजाला है?" तिमिर तनय का प्रश्न.

"हां भाई, उजाला तो है, प्रकाश की ऊष्मा भी है. नेत्रहीन होना कोई दुर्भाग्य नहीं है, परंतु दृष्टिहीन होना दुर्भाग्य है." भीड़ से फिर सामूहिक ठहाका उभरा, परंतु इस बार ठहाकों में अमर्ष भी था.

"यह ऊष्मा तो तिमिर देवता की है." तिमिर तनय ने कहा.

"मैं कैसे मान लूं? स्वानुभूत सत्य को क्यों झुठला दूं?"

"इसलिए, क्योंकि हम कहते हैं."

उलूकों और चमगादड़ों की भीड़ में एक अकेला हंस. उसने उजलेपन से भ्रमित होकर उजले-उजले बक को टेरा. धवल नामक वह बक भी कन्नी काट गया. विवेकगिरि बेचारे को क्या पता था कि हर उजला जीव हंस नहीं होता.

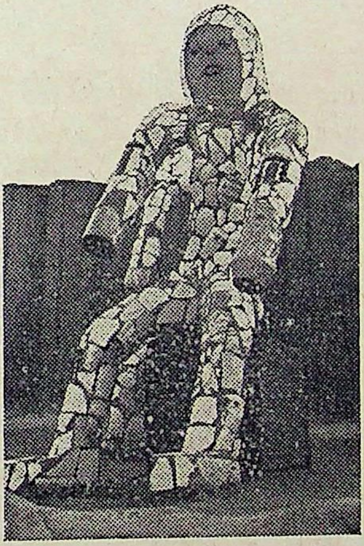

● स्वदेश कुमार

"अपनी बात का एक-एक शब्द तुम्हें वापस लेना होगा. हमारे साथ कहो. . . यह अंधेरा है, सूरज कहीं नहीं है, उजलापन कहीं नहीं होता, प्रकाश प्रवंचना है, यह ऊष्मा तिमिर की ऊष्मा है." तिमिर तनय ने आदेश दिया और उसके आदेश को एक हिंस्र शोर ने समर्थन दिया.

"मगर यह तो सरासर गलत है, मुझ पर स्याह को सफेद करने का आरोप लगाते हो और स्वयं सफेद को स्याह कर रहे हो, यह तो अंधेर है!" विवेकगिरि के स्वर में एक उदात्त अस्वीकार था.

"अच्छा! हम सब अंधे हैं, गलत हैं? तुम्हारे पास ही दृष्टि है. बड़े आये सूरज और उजाले की बात करने वाले. यह कोई सरफिरा है, या फिर दुश्मन का दलाल है. बोलो, हमारी हां में हां मिलाते हो या नहीं?" तम तोम नामक उलूक गरजा. उसके स्वर में स्वर मिला सभी चमगादड़ों और उलूकों ने भी गर्जना की. विवेकगिरि ने देखा, उसके चारों ओर चमगादड़ और उलूक अपने नाखून और चोंच तेज कर रहे थे. नाखून और चोंच की यह भाषा उसने पहली बार देखी थी, प्राणों पर बन आयी देख विवेकगिरि बोला, "सूर्य एक भ्रम है, प्रकाश अथवा उजाला उससे भी बड़ा भ्रम है, यह तपिश तिमिर की है. मेरी धारणा शत-प्रतिशत गलत थी. मैं आपकी धारणा को स्वीकारता हूं और पहले कहे गये अपने प्रत्याय का हर अक्षर वापस लेता हूं." एक करुण आत्मसमर्पण.

"यह हुई न बात!" तिमिर-तनय मगन होकर बोला, "तुरंत इस तरह हमारा मत स्वीकारना भी दुश्मन की कोई चाल हो सकती है. हमें अपने बीच गद्दारों को पनपने नहीं देना चाहिए. जो हमसे टकरायेगा. . . .!" तम तोम ने नारा उछाला.

"चूर-चूर हो जायेगा!" चमगादड़ों और उलूकों ने नारे का जवाब दिया और विवेकगिरि पर टूट पड़े! . . .और पहले ही आत्मसमर्पण से उद्भूत आत्मघात से मरे हुए विवेकगिरि को चीथ डाला.

इसके बाद उसकी उजली देह को अमन के परचम के रूप में लहराते हुए चमगादड़ों और उलूकों की संयुक्त विज्ञप्ति आयी—हम शांति के हिमायती हैं, हमारी किसी से तकरार नहीं है. हम 'जीओ और जीने दो' में विश्वास करते हैं.

▣

"विवेकगिरि ही बार-बार कभी महात्मा सुकरात, कभी महामति गैलीलियो के रूप में जनमता आ रहा है. उसने विधाता द्वारा प्रस्तावित आवागमन से मुक्ति को अस्वीकार कर दिया है." भगवान शंकर ने कथा पूरी की.

"माता पार्वती भी तुम्हारी ही तरह उदास हो गयी थीं." काकभुशुंडि ने निःश्वास छोड़ते हुए वैनतेय को प्रबोध दिया. □

● 23, महावीरन गली, इलाहाबाद-3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंतजार और अभी . . . और अभी . . . और अभी!

तस्वीर बोलती है

▣ सतीश खन्ना
बी. बी. 44, वीरेंद्र नगर,
नयी दिल्ली-18

▣ संतोष कुमार
3/171, छोटा ठाकुरबाड़ा,
शाहदरा, दिल्ली-32

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ शिव कुमार
1445, वजीर नगर,
नयी दिल्ली-3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Subhodaya

• सर्वश्रेष्ठ लेखक • बहुचर्चित पुस्तकें
• असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण
• सजिल्द संस्करण से ठीक आधा मूल्य
• सदस्यता-शुल्क मात्र 3 रुपये

आलोचना पुस्तक परिवार

आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर उच्च कोटि का साहित्य आधे मूल्य पर प्राप्त करें।

नवम्बर मास में आधे मूल्य पर सुलभ हैं

दो व्यंग्य नाटक
शरद जोशी
पृष्ठ : 130; मूल्य : 15.00

दोनों ही नाटक राजनीति के तहत सतत घट रही मूल्यहन्ता त्रासदी से साक्षात कराते हैं।

उत्कृष्ट विज्ञान कथा-लेखन की परम्परा में मनोरंजक ही नहीं, विचारोत्तेजक कथाकृति।

मृत्युंजयी
कैलाश साह
पृष्ठ : 149; मूल्य : 10.00

प्रस्तुत सूची से भी मनचाही पुस्तकें चुनिए :

उपन्यास

चारुचन्द्रलेख	हजारीप्रसाद द्विवेदी	35.00
सुहाग के नूपुर	अमृतलाल नागर	14.00
सीमाएँ टूटती हैं	श्रीलाल शुक्ल	15.00
दिल एक सादा कागज	राही मासूम रज़ा	15.00
वापसी	विलियम सोराबाँ	10.00

कहानी-संग्रह

चिलमन	बलवन्तसिंह	9.00
खामोशी के चीत्कार	अभिमन्यु अनत	10.00

कविताएँ

कविताएँ-1	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	24.00
कविताएँ-2	" " "	16.00

यहाँ सजिल्द संस्करण के मूल्य अंकित हैं। पेपरबैक संस्करण इसके ठीक आधे मूल्य पर उपलब्ध है।

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजितकुमार और मनोहरश्याम जोशी

कुरु-कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता

लेखक मनोहरश्याम जोशी और अजितकुमार के बीच लिखा-पढ़ी

गुब्बारा फुलाने में फट जाये तो सभी को अफसोस होता है, लेकिन कुछ ऐसे शौकीन हैं कि पहले गुब्बारा फुलाते हैं, फिर उसमें पिन चुभो देते हैं. . . .पहले वे जुटाते हैं, महानगर, किशोर-आकांक्षा, रहस्यमयी नारी, बुद्धि-विलास, रूमान-रोमांच. . .ढेर सी सामग्री, फिर बारी-बारी या एक साथ सब कुछ 'स्वाहा' कर देते हैं—यहां तक कि हवन-कुंड और यज्ञ को भी.

उदात्त से लेकर हास्यास्पद तक—सबके प्रति 'कुरु-कुरु स्वाहा' का यह रवैया खासा दिलचस्प है. इसे पढ़कर मुझे याद आया, बहुत पहले बच्चनजी ने अपने एक संग्रह का नाम सोचा था—'पूजा और पलीता', बाद में वह 'प्रणय-पत्रिका' नाम से छपा. 'कुरु' पर मेरी टिप्पणियों के उत्तर में जोशी ने जो टिप्पणियां लिखीं, उनसे मुझे लगा, यह पूजा और पलीता ही नहीं, 'प्रणय-पत्रिका' भी है.

दरअसल, 'युवक-युवती मिलन' या 'गांव-शहर के बीच पलायन' या 'प्राचीन-नवीन के बीच संचरण' के सुपरिचित कथानकों को ताश की गड्डी-सा फेंट-फेंटकर इस उपन्यास में जो 'इंद्रजाल' खड़ा किया गया है, उसे मुमकिन है, कुछ लोग 'हाथ-सफाई' समझें. मेरी वह धारणा पुष्ट हुई है, जो जोशी की 'कूर्मांचली' नाम से लिखी गयी कविताओं और 'उसका बिस्तर' जैसी कहानियों से बनी थी कि उसमें नवोन्मेष, कल्पनाशीलता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतःस्फूर्ति जैसे गुण प्रचुर मात्रा में हैं, वह किसी जकड़बंदी में घिरा हुआ नहीं है, बल्कि जहां भी 'घेराबंदी' पाता है, उसे झकझोरने को बेचैन हो जाता है.

अ.कु.: कुरु-कुरु स्वाहा' कई आशाएं पूरी करता है, उसके लिए पहले तो धन्यवाद स्वीकारो, फिर बधाई लो कि सन् पचास से अस्सी की अवधि का तुमने बहुत सर्जनात्मक उपयोग किया है. संपादन, पत्रकारिता, फिल्म, अनुवाद, अध्ययन आदि तुम्हारे अनेक जीवन-कर्मों की स्पष्ट छाप इस उपन्यास पर पड़ी है. मेरे लिए तो यह उसके प्रति आकर्षण का अतिरिक्त कारण है. फिर भी, मान लो, कोई कहे कि 'सत्य क्या है? इस प्रश्न को बार-बार उठाकर अनुत्तरित छोड़ देने की तरकीब तुमने प्रसिद्ध जापानी फिल्म 'रोशोमोन' से हासिल की है या कि उपन्यास को 'भानुमती का पिटारा' बना देना लोकप्रिय साप्ताहिक की 'संपादकी' का प्रसाद है....तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होगी?

जोशी: बधाई के लिए धन्यवाद, धन्यवाद के लिए भी धन्यवाद. 'कुरु-कुरु स्वाहा' एक स्तर पर घोरतम रूप से एक व्यक्ति-विशेष का अंतरंग उपन्यास है, जिसमें यहां से वहां तक वह अपने मानस को अपने परीक्षण के लिए प्रस्तुत कर रहा है. जैसा कि मेरे एक रिश्तेदार ने कहा, "तुम 'मनोहर : एक जीवनी' लिखने बैठे और 'मनोहर : एक मनःस्थिति' लिख गये." इसलिए अगर उपन्यास में मेरे अनुभव-अध्ययन-कार्यकलाप की छाप आ गयी हो तो कोई ताज्जुब नहीं, लेकिन यह आत्मचरित नहीं है, इसका ब्यौरा मेरी अपनी जिंदगी का ब्यौरा नहीं. वस्तुतः इतने वर्षों बाद जब मैंने पुनः सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में लौटना चाहा तो जरूरी था कि बहुत सी चीजों और बातों को संक्षेप में लिखकर मुक्ति पा जाऊं, जो मेरे मन में उठी थीं, मगर मैं लिख नहीं पाया था. तुम अनुभव करोगे कि इस उपन्यास में कई ऐसे थीम हैं, जिन पर शायद मैं स्वतंत्र रूप से कहानियां या उपन्यास लिख सकता था. यह गोया 'शुद्धि' का सिलसिला था मेरे लिए.

'रोशोमोन' की तरह यह जताना कि एक ही घटना के चश्मदीद गवाह अपने-अपने दुराग्रह के कारण उसका वर्णन अलग-अलग तरह से करते हैं, मेरा लक्ष्य नहीं है. 'सत्य क्या है?' वाला सवाल इस उपन्यास में नायिका 'पहुंचेली' को लेकर शायद उठाया जा सकता है, लेकिन 'वह कौन थी?' के बहाने भी यहां 'मैं कौन हूं?' का ही सवाल उठा है और 'मैं' से मुराद केवल लेखक-नायक से नहीं, मानव-मात्र से भी हो सकती है, कम-से-कम औसत बुद्धिजीवी से तो हो ही सकती है. कौन-सी दृष्टि? कौन-सा जीवन-दर्शन? ऐसे सवाल जो भले ही बतर्ज बकवास, मजाहिया माहौल में उठाये गये हैं, 'मैं कौन हूं?' के सवाल से जुड़े हुए हैं. इसलिए नायक की परेशानी औसत आधुनिक बुद्धिजीवी की परेशानी मानी जा सकती है और यह परेशानी अगर 'भानुमती का पिटारा' छाप मानस से पैदा हुई हो तो भानुमती के पिटारे से कैसे बचिएगा?

यह बड़े कौशल से लिखा और उतनी ही कुशलता से संपादित उपन्यास है. नायक को 'तिमंजिला' तो खैर तुम्हीं ने बताया है, मुझे इसका कथ्य और उद्देश्य भी दोहरा-तिहरा मालूम हुआ. सरसरी निगाह से इसको पढ़ने वाले शायद अंत और तह तक पहुंच ही न पायेंगे. मजा लेते, समझते-बूझते और सूत्रों को जोड़ते-गूंथते हुए यह उपन्यास पढ़ा जाना चाहिए. 'क्लेडियोस्कोप' घुमाने पर चूड़ी के टुकड़ों के जो नये-नये पैटर्न उभरते हैं, कुछ वैसा ही प्रभाव इस उपन्यास का भी है. शैक्षिक आलोचना के छह तत्त्वों की खोज इसमें की जाये तो भी मेरा खयाल है, दिलचस्प नतीजे हाथ लगेंगे. कविता की तरह भी इसे पढ़ा जा सकता है, मानो कोई फिल्म बनायी जा रही हो और उसके तमाम ब्यौरे साथ-साथ दिये जायें, कुछ इस तरह की पद्धति है उपन्यास की. कथ्य में भी निरर्थक को अर्थयुक्त और अर्थयुक्त को निरर्थक या परिचित को अपरिचित और अपरिचित को परिचित बनाने की कोशिश है. इसीलिए यह उपन्यास एक साथ लेखन, शास्त्रीय गायन और चलचित्र का मजा देता है....लेकिन क्या तुम मुझसे सहमत हो कि इस लेखन-शैली को बार-बार दोहराया नहीं जा सकता. जिसे 'गिमिक' या 'तरकीब' कहते हैं, वह उपन्यास-लेखन को बहुत दूर तक नहीं ले जाती.

किसी भी लेखन-शैली को दोहराने पर कोई पाबंदी नहीं. लोग-बाग तो शैली क्या, कथ्य भी दोहराते चले जाते हैं. अगर तुम यह चाहते हो कि मैं वादा करूं कि कभी इस शैली में लिखने की गलती न स्वयं करूंगा, न औरों को करने दूंगा तो वह जरा मुश्किल वाली बात होगी. रही 'गिमिक' की बात. तुम यह शब्द इसलिए इस्तेमाल कर रहे हो कि इससे चतुराई और खोखलापन भी ध्वनित होते हैं, लेकिन यही स्थिति 'क्राफ्ट' की भी है, आज भी 'क्राफ्टी' किसी भले आदमी का विशेषण नहीं. 'बनावट' की जब हम चर्चा करते हैं तो यह भी जानते हैं कि 'बनावटी' होना बहुत बुरी चीज है. शैलीगत किसी भी प्रयोग विशेष के विषय में दो रायें हो सकती हैं—कुछ उसकी बनावट सराह सकते हैं तो कुछ उसके बनावटीपन को लानत भेज सकते हैं. बनावट एक माने में 'कुरु' का मूल विषय है. शिल्प भी यहां कथ्य का ही एक अंग है.

प्रसंगवश, इतना और कह दूं कि व्यक्तिगत रूप में मैं शिल्प को बहुत महत्त्वपूर्ण शैली मानता हूं. 'फॉर्मेलिज्म' का साहित्यिक गाली के रूप में हमारे समीक्षकों ने इतना इस्तेमाल किया है कि अच्छा लिखना, रोचक लिखना, मेहनत से लिखना, साहित्यिक घासलेटीपन का नमूना समझा जाने लगा है. अगर तुम यह कहना चाहते हो कि मेरा यह उपन्यास 'बन नहीं पड़ा है', मेहनत-मशक्कत से 'बनाया-संवारा' गया है तो मैं 'घासलेटीपन' को बहुत फख्र के साथ स्वीकार करता हूं. अगर तुम यह कहना चाहते हो कि 'गप्प-बायस्कोप' गोया किस्सागोई और सिनेमा से समान रूप से उधार ली गयी जो शैली मैंने इस उपन्यास में अपनायी है, वह प्रस्तुत कथ्य के लिए गलत थी, याकि उसमें उपन्यास लिखे ही नहीं जाने चाहिए तो मैं तुमसे सहमत नहीं हो सकता. यह जरूर है कि हर तरह का कथानक इसमें नहीं समेटा जा सकता. यह भी कि शैलीगत किसी भी प्रयोग का नयापन, पुराना और परिचित पड़ जाने के लिए सर्वथा अभिशप्त है. यह भी पुराना पड़ जायेगा.

तुमने जगह-जगह साहित्यिक संदर्भ दिये हैं कि माल कहां से मारा जा रहा है. इसने उपन्यास को खासा चटपटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना दिया है, पर यह बताओ कि बर्न, पेनफील्ड, हैरिस आदि मनोविश्लेषकों के पेरेंट, एडल्ट, चाइल्ड (पी. ए. सी.) वाले नुस्खे पर अपना नायक गढ़ने पर भी तुमने इनका जिक्र तक क्यों नहीं किया? 'ट्रांजैक्शनल अनालिसिसि' (टी. ए.) आज इतना प्रचलित है कि कोई भी जान सकता है: 'मनोहर' चाइल्ड है, 'जोशीजी' पेरेंट और 'मैं' एडल्ट. इन तीनों 'अहं स्थितियों के पाठ्यपुस्तकीय ब्यौरों की झलक उपन्यास में लगातार मिलती है.

इस 'आभार' को तुम स्वीकारते तो यह खतरा जरूर था कि नायक को तिमंजिला बताकर/बनाकर जो चमत्कार तुमने दिखाया है, वह थोड़ा कम हो जाता. पढ़नेवाले कह सकते थे: अरे, सभी होते हैं तिमंजिले, सब में 'पितृ' 'वयस्क' और 'शिशु' बोधों के बीच टकराहट/तालमेल की स्थिति रहती है... फिर भी, तुम्हारे चरित्र 'किताबी' नहीं, सजीव हैं, तुम्हारा वृत्तांत 'तकनीकी' नहीं, रोचक है—यह उन्हें मानना पड़ता. टी. ए. से उपन्यास का सीधा रिश्ता पहचान लिया जायेगा, यह तुम्हें नहीं सूझा?

असल तो कथावाचक उपन्यास में मनोहर और जोशी के ही विचारों के संदर्भ देता है, अपने नहीं, फिर उपन्यास में व्यक्तित्व का जो तिमंजिला विभाजन किया गया है, वह टी. ए. के विभाजन से भिन्न है. 'मनोहर' सहज आस्था का यानी हृदय का प्रतीक है, 'जोशीजी' संदेह-जिज्ञासा के यानी मेधा के और लौकिक कथावाचक 'मैं' काया का, अस्तित्व-रक्षा उर्फ चमड़ी बचाने के लिए आवश्यक काइयांपन का.

'ट्रांजैक्शनल अनालिसिस' जैसा नाम से ही स्पष्ट है, आपसी संवाद और व्यापार से संबंध रखता है. उसमें बताया जाता है कि आपसी बातचीत और लेन-देन में गड़बड़ तब होती है, जब दोनों पक्ष व्यक्तित्व की एक ही या एक-दूसरे की पूरक मंजिल पर स्थित न हों. मैंने व्यक्तित्व का जो विभाजन किया है, वह उस आंतरिक संवाद से ताल्लुक रखता है, जिससे हमारा जीवन-दर्शन भी तय होता है. यह एक विचित्र संयोग है कि मेरे साहित्य-गुरू अमृतलाल नागर इन दिनों सूरदास पर जो उपन्यास लिख रहे हैं, उसमें भी नायक के व्यक्तित्व का तीन हिस्सों में विभाजन किया गया है. यह सूचना स्वयं नागरजी ने मझे 'कुरु' पढ़ने के बाद दी, लेकिन उन्होंने 'तल, अतल, सुतल' में व्यक्तित्व का जो विभाजन किया है वह भिन्न प्रकार का है और 'तल-अतल-सुतल' जिस बिंदु पर एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं, उसकी खबर न टी. ए. वालों को है न 'कुरु' के लेखक को.

मैं कहना यह चाहता हूं कि व्यक्तित्व के विभाजन की तरकीबें कई हो सकती हैं और जरूरी नहीं कि जहां तिमंजिला नायक दिखाई दे, टी. ए. की दुहाई दी जाये.

यह कृति एक साथ बहुत-कुछ कहना करना चाहती है: भाषा की क्षमता का प्रदर्शन, अनेक चरित्रों का निरूपण, नारी की रहस्यमयता का विवेचन और हमारी उलझी हुई जटिल पहचानों का कथन. हिंदी आलोचना की शब्दावली में कहूं तो पूरा उपन्यास 'अस्मिता की खोज' का एक प्रयास है, पर इसे हलके-फुलके, सनक भरे चतुर ढंग से रचा गया है. आखिर क्यों, वह हास्य की फुलझड़ी बन गया है, जबकि उसमें पीड़ा-करुणा-गंभीरता की स्पष्ट अंतर्धारा लगातार मौजूद है?

तुमने सुना ही होगा कि मजाक हमेशा नादान, गंभीर और खतरनाक होते हैं. वे जिन्होंने मजाक को मजाक समझ रखा है. अगर तुम्हें ऐसा महसूस होता है कि उपन्यास में पीड़ा-करुणा-गंभीरता की स्पष्ट अंतर्धारा है, लेकिन कुल मिलाकर यह हास्य की फुलझड़ी बन गया है तो इसके तीन ही कारण हो सकते हैं— या तो यह कि उपन्यास है ही हास्य-फुलझड़ी, लेकिन तुम समीक्षकों ने परसाई-शरद-श्रीलाल की जो दुर्गति कर रखी है, उसे ध्यान में रखते हुए चतुर मनोहर ने गंभीरतावाला आयाम भी डाल दिया है कि तुम लोग व्यायाम कर सको, थोड़ा-बहुत. या वह कि ओर्तेगा गास्से पढ़ने के बाद लेखक ने तय पाया कि आधुनिक उपन्यासकार को ऐसा प्रपंच रचना पड़ता है कि पाठक इस आश्वासन और आत्मविश्वास के साथ उसकी कृति के संसार में घुस जाये कि सब देखा-समझा है और फिर चकराये कि यह देखा-समझा हुआ भी कुछ अजीब-अनचीन्हा क्यों कर मालूम हो रहा है? और तीसरा कारण, वही जो शुरू में कहा कि मजाक होते ही गंभीर हैं.

अगर तुम्हें ऐसा लगता हो कि 'कुरु' में गंभीरता वाला आयाम जबर्दस्ती घुसा दिया गया है, गोया वह एक अतिरिक्त मजाक है तो कारण नंबर एक को सही जानो. ऐसा न लगता हो तो दूसरे-तीसरे कारण में से कोई एक या दोनों चुन लो.

मैं समझता हूं कि अलग-अलग पाठकों को यह उपन्यास अपने-अपने ढंगों तथा कारणों से सार्थक निरर्थक प्रतीत होगा. किसी को वाक्यपटुता आकर्षित करेगी तो कोई तांत्रिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रस लेगा. किसी को 'पहुंचेली' की तलाश में भारतीय अस्मिता की खोज दिखाई देगी तो कोई साहित्य और साहित्यकारों के हवाले दिलचस्प मानेगा. मुमकिन है, ऐयारी-तिलिस्मी उपन्यासों का मजा भी कुछ को मिले, कुछ को शायद भदेस और भावविह्वलता की यह अनूठी जुगलबंदी 'काबिले दाद' लगे, कुछ शायद इससे हैरान हों कि इसमें 'मिथक' को समकालीन और समकालीन को 'मिथक' बनाने का चक्कर है, लेकिन हिंदी में लेखक और पाठक जैसे कठघरों में बंटे हुए हैं, उसे जानते हुए, अब उपन्यास के बाजार में पहुंच जाने के बाद—तुम्हारा अनुभव क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि 'हाई ब्रांड और लो-ब्रांड' दोनों ही वर्ग इसको संदेह की दृष्टि से देखने लगे हों?

मैं कह नहीं सकता कि बाजार में इस उपन्यास का भाव क्या है? लेकिन मैं इतना जरूर जानता हूं कि निहायत ही अलग-अलग किस्म के लोगों ने 'कुरु' पूरा पढ़ा है और उसे अपने-अपने ढंग से कोसा-सराहा है. इस उपन्यास को लिखते-सुधारते हुए मेरी बराबर यह कोशिश रही है कि अधिक-से-अधिक पाठक इसमें रस ले सकें. जिस मानस का इस उपन्यास में खाका खींचा गया है, वह कुशवाहा कांत से लेकर अज्ञेय तक सब में रमा है और इसकी यह इच्छा हो सकती है कि कुशवाहा कांत से लेकर अज्ञेय तक इस के पाठक हों. यह खतरा भी है कि लो-ब्रांड और हाई-ब्रांड की जुगलबंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कुछ मिडिल ब्रांड उखड़ जायें. बाकी लो ब्रांड और हाई ब्रांड को इससे तुष्टि मिलेगी, ऐसा मुझे विश्वास है.

कुछ-कुछ 'लैंपुलिंग' (टांग-खिचाई) जैसा है यह उपन्यास, लेकिन 'राग दरबारी' से थोड़ा भिन्न. वह है मुख्यतः राजनीतिक सामाजिक भ्रष्टाचार का खुलासा, जबकि 'कुरु' के प्रहार का मुख्य लक्ष्य हैं—वे तरह-तरह के भ्रम, गलतफहमियां, जो सदाशय लोगों को भी जकड़े-बांधे हैं. तभी तो इस उपन्यास में 'विलेन' कोई नहीं, सब मानो भूलभुलैया में खोये से हैं. एक ओर तो है—वस्तुस्थिति के प्रति यह पॉजिटिव, संपन्न दृष्टि...दूसरी ओर उपन्यास के पात्र—जिस तरह कि पाठक भी—अंततः छूछे, खिसियाये-खोखले से रह जाते हैं. मान भी लूं कि 'सदन' या 'आश्रम' में पहुंचकर, 'अंत भला तो सब भला' दोहराना सरलीकरण होगा, पर तुमने जिन पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी को उपन्यास समर्पित किया है, उनकी कृतियां निश्चय ही दृष्टिसंपन्न हैं. तो फिर 'ढोल में पोल' वाले एक अन्य सरलीकरण की ओर तुम क्यों आकर्षित हुए?

तुम्हारा यह कहना बिल्कुल सही है कि उपन्यास में कोई खलनायक नहीं है. मैं समझता हूं कि किसी का अपने को 'हीरो' समझना ही किसी अन्य के लिए 'विलेन' होना है.

जिन्हें तुम 'भ्रम' कह रहे हो, वही हमें 'हीरो' बनाते हैं. आधुनिकता की शुरुआत वहीं से होती है, जहां से यह भ्रमजाल पारलौकिक न होकर, इहलौकिक हो जाता है. मानव-केंद्रित संस्कृति में जब 'व्यक्ति' मानव का प्रतीक बनने लगता है, तब वह स्थिति आती है, जिसमें हर व्यक्ति 'हीरो' होता है, लेकिन अगर हर व्यक्ति 'हीरो' हो तो या तो समस्त मानव जाति अपने हीरो युग में अब प्रवेश किया चाहती है या फिर हर व्यक्ति के लिए हर व्यक्ति 'नरक' है, विलेन है.

ढोल में पोल है, कह देना निश्चय ही सरलीकरण है और खतरनाक सरलीकरण है, क्योंकि इससे अनास्था पैदा होती है, लेकिन इससे घबराकर सरलीकरण नहीं है?

मैं हर्गिज यह नहीं कह रहा हूं कि फसलफे की यह चुनाचुनी मैंने 'कुरु' में लिखी है. मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि जिस मानस, जिस वातावरण का अंकन यहां किया गया है, वह इस चुनाचुनी से आक्रांत है.

उपन्यास में तुमने आडंबर की बखिया कुछ इस तरह उधेड़ी है कि कहा जा सकता है कि इस रचना में प्रदर्शन का उपहास बड़ी प्रदर्शनात्मक भंगिमा के साथ हुआ है. जब तुम्हारे लिए सभी कुछ संदिग्ध और अविश्वसनीय है तो फिर इस 'भंगिमा' पर इतनी निर्भरता क्यों? नकारवाद को तुम 'अंधे की लाठी' की तरह इतनी मजबूती से क्यों पकड़े हुए हो कि लगे, मूर्ति-भंजन की मूर्ति बनायी जा रही है.

मूर्तिभंजक की भी मूर्ति बनती है, प्रदर्शन का उपहास भी प्रदर्शनात्मक होता है, यही शायद मैं जताना चाह रहा हूं. मैं तुमसे जानना चाहूंगा कि उपन्यास के तिमंजिले कथानायक की किस मंजिल से तुम यह प्रश्न कर रहे हो? मनोहर आस्थावान है, जोशीजी विवेक आवश्यक मानते हैं. उपन्यास को छोटा करने और 'बौद्धिकता की मात्रा घटाने की दृष्टि से जब मैंने पाडुलिपि का संपादन किया, तब जोशीजी के कुछ संवाद काट दिये, मिसाल के लिए "टू डाउट इज टू बी ए डिमोक्रेट" या "मैं विश्वास का समर्थन कर रहा हूं, अंध विश्वास का नहीं." जोशीजी उदार हैं, बुद्धिजीवी हैं और उनमें रचनात्मक व्यक्ति का अहम् पूरी तरह मौजूद है. कथावाचक 'मैं' अवश्य ही दुनियादार व्यक्ति की तरह यह कह रहा है कि संभव है, कोई बहुत ऊंची किस्म की बातें-चीजें होती हों, लेकिन कामकाजी दुनिया में उन्हें भूल ही जाना अच्छा है, वरना कहीं गलती से मारे जाओगे. ये तीन मंजिलें गोया जीवन दर्शन हैं. अगर इनमें से किसी एक को भी अंधे की लाठी की तरह पकड़े होता तो सीधा-सादा उपन्यास लिख पाता, मुझे गप्प-वायस्कोप लिखने की जरूरत नहीं पड़ती.

अगर तुम्हें सचमुच यही महसूस होता है कि उपन्यास में नकारवाद की पैरवी की गयी है तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होती है? यह कि इस उपन्यासकार को पीटो, हम आस्थावानों को बिगाड़ने की कोशिश कर रहा है, कमीना! या यह कि सहज आस्था बीसवी सदी के इस अंतिम दौर में असंभवप्राय हो गयी है और लोकतंत्र, विज्ञान आदि के लिए जरूरी है कि एक हद तक वह असंभवप्राय रहे, अनावश्यक मान ली जाये या यह कि अगर संदेह करना ही लोकतंत्रात्मक होना है तो मूल्यहीनता और अनास्था से भी कोई बचत नहीं, क्योंकि 'विवेक' और 'चतुराई' में तमीज कर पाना हर किसी के लिए आसान नहीं. नकारवाद से परेशानी कुछ और लोगों को भी हुई है. मेरे लिए यह तथ्य बहुत दिलचस्प है कि इन लोगों ने कथावाचक 'मैं' के जीवन-दर्शन से लेखक को जुड़ा हुआ पाया है. व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए यह बहुत खुशी की बात है कि मेरे साथ लेखक 'नकारवाद' और 'रूपवाद' से चिढ़ते हैं. इतने अधिक छिपे रुस्तम, क्रांतिविश्वासी और मार्क्सवादी इस प्रदेश और भाषा में मौजूद हैं, इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं थी. हमें विश्वास करना चाहिए कि भले ही बासठ से लेकर अब तक इस देश में कुछ न हुआ हो, आइंदा बीस वर्षों में इन लोगों की अदम्य आस्था क्रांति कर दिखायेगी. उपन्यास की जो कथावस्तु है, वह संक्षेप में यों है कि लेखक-बुद्धिजीवी जोशीजी, अपने को कच्चा माल सप्लाई करने वाले मनोहर से परम संतुष्ट हैं, गो कि वह उसकी सहज आस्था और अबोधता को खासे संशय से देखते हैं. उन्हें इतने 'सरलीकरण' पर एतराज है. यही जोशीजी, 'मैं' की काइयां-कमीनी-सिनिकल चमड़ी-बचा-दमड़ी-बना दृष्टि से खफा हैं और 'मैं' की तरह 'शैलो' नहीं होना चाहते. पहुंचेली इस तिमंजिले नायक के सामने प्रतिबद्धता का सवाल पेश करती है, मनोहर प्रतिबद्ध होने के लिए तैयार है, जोशीजी गोया अपने 'कमेंट रिजर्व' किये हुए हैं और 'मैं' कह रहा है कि प्रतिबद्धता, साहस, आदर्श ये तमाम आउट-ऑफ कोर्स बातें हैं, क्यों व्यर्थ में शहीद होना चाहते हो. 'मैं' के इस 'कॉमनसेंस' से जोशीजी की 'इंटेलेक्चुअलटी' पट जाती है और मनोहर की सहज आस्था अकेली पड़ जाती है. तुम चाहो तो इसे 'सिनिसिज्म' का नमूना मान लो, कोई और चाहेगा तो इसे 'अतिवाद' का मान लेगा कि आस्था सहज और साहसी ही हो सकती है, जहां अगर-मगर है वहां 'सिनिसिज्म' आकर रहेगा.

मनोविषाद और अति गंभीरता से पीड़ित हिंदी पाठक को यह जो विनोदपूर्ण रचना तुमने दी है, उसका समा...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एक तरह के महाशून्य में क्यों कर डाला है? क्या एक कामेडी को ट्रैजेडी की 'हाईसीरियसनेस' प्रदान करना शैलीगत विभ्रम नहीं? लुकाछिपी, शको-सुबहा, रोना-रूठना, नाज-नखरा—जो इस उपन्यास में आदि से ही है—अंत में 'जैसे उनके दिन बहुरे, वैसे सबके फिरें' वाला आश्वासन क्यों नहीं दे सका? लोकप्रिय, उपयोगितावादी, बिकाऊ मनोविज्ञान तो यही समाधान देता है—'आई एम ओ. के., यू आर ओ. के.'—'मैं तेरा चांद, तू मेरी चांदनी.' उसकी जगह, 'भ्रांतिरूप में स्थित देवी' पर कैमरे का आखिरी शॉट तुमने क्यों फोकस किया?

मान लो करो, मैं एक सीधा-सपाट उपन्यास लिखूं—जिसमें इसी पात्र को, इसी जिंदगी को एक ट्रैजेडी के रूप में प्रस्तुत करूं—क्या तुम उसे भी एक स्तर पर हास्यास्पद नहीं मानोगे? हजार रुपये माहवार वाली नौकरी की तलाश, गंवार देश में बौद्धिक माहौल का संधान, तंत्र और क्रांति से दूर ही दूर से छेड़छाड़, मध्यवर्गीय मूल्यों के प्रति 'विद्रोह' और अंत में उनकी स्वीकृति—यह ट्रैजेडी है! ! इसमें कौन-सा 'हाईड्रामा' है? कौन सी तपस्या, कैसा त्याग निहित है? लेकिन पता नहीं, हममें से कितनों के लिए यह नितांत अपनी ट्रैजेडी है. इसे हम उसी रूप में प्रस्तुत भी करते हैं, सराहे भी जाते हैं. जब इसी कहानी को कामेडी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब क्या इसके 'ट्रैजिक' आयाम को सर्वथा नकारा जा सकता है?

तर्क-विवेक और 'हाईड्रामा' में बैर है. 'हाईड्रामा' एक स्तर पर हमेशा तर्क-विरुद्ध और इसलिए हास्यास्पद भी ठहरेगा. 'कुरु' में एक औसत भारतीय बुद्धिजीवी के जीवन के 'हाईड्रामा' की कहानी उसके हास्यास्पद पक्ष को रेखांकित करके सुनायी गयी है. लेकिन 'हाईड्रामा' वह है, ट्रैजेडी वह है, इससे कैसा इनकार? 'नर्वस ब्रेकडाउन' का वर्णन हास्य-व्यंग्य के तेवर से किया गया है, लेकिन है तो वह त्रासद नर्वस ब्रेकडाउन. एक प्रकार से, यह उपन्यास—'नार्मल' होने की खातिर अबोध 'मनोहर' की हत्या किये जाने का उपन्यास है. वही हीरो है, यथार्थ जीरो है.

जिस माहौल में परंपरागत 'नायक' और 'मूरख' पर्यायवाची हो चुके हों, उसमें यों भी ट्रैजेडी और कामेडी में तमीज कर पाना मुश्किल है. यदि तुम्हारे पास कोई सताया हुआ आदमी आता है और कहता है कि मैं इस दुनिया को आग लगा दूंगा, नहीं तो अपने आग लगा लूंगा—तुम उसे 'महा' कहने के बाद मूरख भी नहीं कह देना चाहते? क्या तुम उसे पागलपन से बाज आने की सलाह नहीं देते?

'भ्रांति रूप में स्थित देवी' की प्रतीकात्मकता इतनी स्पष्ट है कि उसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं. 'डिस-इल्यूजन' हमारी अधुनातन संस्कृति की विशिष्ट भंगिमा है, लेकिन 'इल्यूजन' न रहने पर 'शक्ति' भी नहीं रहती, क्योंकि शक्ति को सांसारिकता हम 'माया' के रूप में ही जानते हैं.

वैसे 'उपसंहार' "आई एम ओ. के. यू आर ओ.के." ही है. यदि किसी भी चीज में आस्था न रहे तो जिंदगी के नाम पर 'मोहदात' ही बचता है कि कौन मकुआ क्या बन गया?

जिसे परिनिष्ठित या मानक हिंदी कहते हैं, उसकी जड़ों तक पहुंचने की कोशिश हमने आंचलिक कथा-साहित्य में देखी है. उसी पड़ताल का एक और आयाम तुम्हारे उपन्यास में है. 'वृक्ष' के ही रूपक को लें तो कहेंगे कि शाखा-प्रशाखाओं, पल्लवों-पुष्पों के विस्तार में पहुंच गये हिंदी के सार्वजनिक, राष्ट्रीय चरित्र को पहचानने/उभारने का प्रयास तुमने किया है. जो खड़ी बोली बहुत अरसे तक सिर्फ—'किताबी भाषा' थी/मानी गयी थी, वह आधी सदी के दौरान, किस तरह, एक ओर 'पुस्तक' के दूसरी ओर 'देवभाषा' के आतंक से मुक्त हो, जीवन की भाषा बनती गयी है, इसका अच्छा नमूना तुम्हारा उपन्यास पेश करता है.

इस कृति में हिंदी की अनेक परंपराएं एक साथ समेटी और बढ़ायी गयी हैं. पंडिताऊ हिंदी, विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही बोलचाल की हिंदी और मानक हिंदी—ये तीनों भाषा-रूप आरम्भ से ही हिंदी में लक्षित रहे हैं. लल्लूलाल, इंशा, सदासुखलाल के समय से लेकर अब तक ये धारायें अलग-अलग दिखती थीं, अब 'कुरु' जैसे उपन्यासों में ये समन्वित और एकजुट मालूम होती हैं. जैसे तिमंजिला नायक, वैसे ही हाई-ब्रांड, मिडिलब्रांड, लो-ब्रांड तेवर, और उसी तरह थ्री-टियर भाषा. व्यक्ति, प्रदेश, हरकत, चरित्र, वर्ग, संस्कार और मनोदशा को उद्घाटित करने में यह भाषा समर्थ हुई है. लेखक-विशेष या व्यक्ति-विशेष की भाषा से आगे बढ़कर वह 'फिक्शन' की भाषा बन सकी है. ऐसी भाषा के उबाऊ हो जाने या 'क्लीशे' बन जाने का खतरा तो हमेशा रहेगा ही, क्योंकि वह किन्हीं चरित्रों-भावनाओं-संकल्पनाओं की क्रमबद्ध रचना तुम्हारे उपन्यास में नहीं कर रही, 'विट' या 'रिपार्टी' के स्तरों पर वाग्विलास में व्यस्त रहती है.

संसार का काम तब चलता है, जब हर व्यक्ति, हर वस्तु वही हो, जो उसका नाम हो. जहां 'संज्ञाओं' में यह अंधविश्वास चुकने लगता है, वहां सारी वस्तुओं-व्यक्तियों और स्वयं अपने से विश्वास उठने लगता है, 'कुरु' में इसी स्थिति में डूबे हुए मन का अंकन है, इसलिए भाषा के मायावी पक्ष पर उसमें खास जोर दिया गया है. भाषा ही पात्र है. गोया जिस हद तक भाषा मात्र परिपाटी है और परिपाटियों में से आपकी आस्था उठ चुकी है, उस हद तक वह यहां से वहां तक और कुछ नहीं, छलना है.

इस उपन्यास में मैंने भाषा के कई तेवर (और तेवर ही क्लीशे है एक माने में) साथ-साथ चलने दिये हैं, पात्र और परिस्थिति के अनुरूप. प्रश्न यह है कि 'क्लीशे' रेखांकित करने के बावजूद क्या भाषा में उद्वेलित करने की शक्ति बच रहती है? दक्षिणा देते हुए "तत्सत नमम्" (उसकी है, मेरी नहीं) कहने से अधिक पिटा हुआ, चुका हुआ क्लीशे क्या हो सकता है? लेकिन क्या इस पंक्ति को लगभग कॉमिक, सर्वथा ऊलजलूल पूजा के दृश्य तक में एक विशिष्ट संदर्भ में दुहरा देने से वह पाठक उद्वेलित नहीं होता, जिसके लिए यह क्लीशे पुरखों की विरासत हो? क्या क्लीशे मानकर अनादर कर दिये जाने पर ही हमें यह बोध होता है कि यह समादृत भाषा है और जो वाग्विलास वाली बात तुम कह रहे हो तो उपन्यास के ज्यादातर पात्र बुद्धिजीवी हैं और वाग्विलास की नहले पर दहले जमाने की कुटेव इस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमात में कसरत से पायी जाती है. हिंदी के लेखकों में भी तुमने देखा होगा कि या तो कानों में कान डाल काम की बातें करते हैं या खुले में एक-दूसरे पर फब्तियां कसकर हंसते-हंसाते हैं. उपन्यास में कथावाचक तो एलानिया 'शैली' बुद्धिजीवी है, उसके रहते वाग्विलास ही होगा, मरसिया नहीं, बल्कि यों कहना चाहिए, मरसिया भी वाग्विलास की तरह प्रस्तुत किया जायेगा. क्रमबद्ध विकास की बात तो वहां आती, जहां चरित्रों का पारंपरिक ढंग से निरूपण किया जा रहा होता. यहां तो केवल गप्पें हैं, दृश्य हैं, संवाद हैं और 'डायलाग' का महज 'डायलाग' होना रेखांकित किया गया है.

देखता हूं कि तुम्हारा समापन वक्तव्य पुस्तक के अंतिम आवरण पर मुद्रित है: "कमीनो! जो भी तुम लिये हो, हाथ में अपने—अतीत की अक्षय आचमनी, वर्तमान की विदग्ध वर्तिका, अनागत का अमोघ अस्त्र या और कोई झूठ, झूठ, झूठ, जो भी तुम लिये हो हाथ में अपने! और इस हथियार के चमत्कार का आश्वासन देनेवाली सौगंध खाने के लिए जो भी रचा हो नाम तुमने अपनी जननी का, क्रांति, विज्ञान, संस्कृति, जो भी, जैसा भी जब-जब रचा हो नाम तुमने. कमीनो! विधवा है तुम्हारी जननी, विधवा है तुम्हारी शक्ति और वह तुमसे सुहागन हो नहीं सकती."

आधुनिक व्यक्ति अपनी विधवा मां को सुहागन बनाने की 'ईडिपस ग्रंथि' से पीड़ित है, ऐसा कहना न केवल सनकवाद से बढ़ते हुए नकारवाद और फिर ध्वंसवाद तक पहुंचना है, बल्कि पूरी बहस को अतीतकालीन 'मिथकता' में धकेल देना है.

पता नहीं, मुझसे क्या टिप्पणी तुम्हें अपेक्षित है. मैं यह ही कहना चाहूंगा कि भारतीयता की सुबह-शाम दुहाई देने के बावजूद हमारे दिमाग पश्चिमी सांचे में ढले हुए हैं. जहां जननी की, शक्ति के रूप में भी चर्चा हो रही हो, वहां भी केवल फ्रायड का ईडिपस काम्प्लेक्स ही हमें-तुम्हें क्यों सूझता है? हम 'एब्सर्ड' की बात कहते हैं, 'माया' की नहीं. ब्रेश्ट ने 'एलिनियेशन' हमसे उधार लिया, लेकिन हम अपनी कृतियों में भी 'ब्रेश्टियन एलिनियेशन' की ही खोज करते हैं.

जिस प्रसंग में यह संवाद आया है, उसमें शक्ति के विधवारूप (धूमावती) की चर्चा है. शाक्त-परंपरा में शक्ति को विधवा, सदा सुहागन और कुंवारी तीनों रूपों में देखा गया है और इसके पीछे यह दृष्टि काम कर रही है कि जो किसी के भी वश की न हो, उस नारी-विशेष को आप चाहे जिस रूप में देखें, कोई फर्क नहीं.

शक्ति की इस रूप-त्रयी को अतिरिक्त प्रतीकात्मकता भी दी जा सकती है—जहां भी शक्ति के इन तीनों रूपों को दर्शाने-वाले तिमंजिले मंदिर हैं—मिसाल के लिए सराहन (हि. प्र.) में. वहां सबसे निचली मंजिल पर विधवा-रूप की झांकी होती है और कोई भी गृहस्थ, यहां तक कि पुजारी भी, उसके दर्शन नहीं करता. बीच की मंजिल में कुमारी-रूप की झांकी होती है—रोजमर्रा इसी की पूजा की जाती है, गृहस्थ भी इसी के दर्शन करने आते हैं. सबसे ऊपर की मंजिल पर सदा सुहागन देवी होती है. उसके दर्शन विशिष्ट अवसरों पर ही किये जाते हैं.

दूसरे शब्दों में, साधारण गृहस्थ के लिए 'संभावना' ही पूज्य मानी गयी है, 'नकार' अथवा 'चरितार्थता' नहीं. यद्यपि वह शक्ति किसी की हो नहीं सकती, उसके 'अपनी' हो सकने की कल्पना भी 'माया' का ही अंग है, तथापि इस संभावना की कामना करने से, उसकी साधना करने से, उस शक्ति की वह छवि अपनी हो सकती है, जो प्राणिमात्र में प्रतिबिंबित है.

यह फलसफा मैं महज इसलिए सुना रहा हूं कि तुमने फ्रायड के फलसफे की चर्चा की, अगर फ्रायडधर्मी व्याख्या से तुम इसे ईडिपस काम्प्लैक्स का नमूना मान सकते हो तो तांत्रिक व्याख्या से कोई व्यक्ति इसे नकार को पूजने और चरितार्थता की गारंटी देने वालों के नाम फटकार भी मान सकता है.

या फिर, यह भी शब्द-समूहों की निरर्थक माया का एक नमूना हो सकता है—शुद्ध डायलागबाजी, जैसा तुम चाहो.

■

इस सादगीभरे डायलाग 'जैसा तुम चाहो!' के बाद लखनवी तकाजा तो यह है कि मैं भी दोहराऊं, 'जैसा तुम चाहो', फिर काफी देर यही डायलाग चलता रहे. . . .लेकिन कई मुद्दों पर हम दोनों कुछ इस तरह सहमत-असहमत हैं कि अंत में पाठकीय परमाधिकार का उपयोग करते हुए, कहना चाहूंगा कि मेरे लिए, किन्हीं अर्थों में, यह नये भारत का एक उपन्यास है.

सदियों की परंपरा के बोझ को उतार फेंकने के लिए व्याकुल इस भारत में आगे बढ़ने की छटपटाहट है, दिशा कोई भी हो. प्रश्नों से भरा, लगभग सब कुछ पर विश्वास-अविश्वास करता, अनुभव की आवृत्ति के प्रति अधीर, तथापि बहुत कुछ को परिचित अथवा नाममात्र को परिवर्तित रूप में अपनाने के लिए विवश है यह भारत. नियति, दासता से वह टकराना चाहता है और उपनिवेश-वाद-पूंजीवाद-उपभोगवाद-हिंदुत्व-सत्तासंघर्ष जैसे संदर्भ उसके सामने हैं? किसे अपनाये, किये त्यागे? वर्तमान में रहने की व्याख्या अपने लिए किस तरह करे?

नये भारत के ये तमाम सवाल इस रचना में बार-बार उठाये गये हैं. हजार की नौकरी, 'तंत्रा-योगा' के प्रति उत्सुकता, एक-ठो 'वेस्टलैंड' या 'वार एंड पीस' जैसी किसी कृति की रचना, संस्कारी ब्राह्मण किशोर की महानगर में हकबकाहट, किसी और के धोखे में किसी अन्य का मारा जाना—आज के भारत की ये ठोस स्थितियां हैं. इनके बीच से गुजरा यह उपन्यास मुझे 'भंगिमा' से कहीं अधिक 'वास्तविकता' के निकट लगता है. 'मैं क्या हूं?' के बुनियादी सवाल के साथ-साथ, यह 'मैं क्या करूं' का भी जरूरी सवाल उठाता है.

उपन्यासकार के साथ अजितकुमार की इस पाठकीय लिखा-पढ़ी के साथ ही 'पखवारे की पुस्तकें' स्तंभ में नेत्रसिंह रावत की लिखी इस उपन्यास की समीक्षा और व्यंग्यकार किट्टू का एक चुलबुला खत भी हम पृष्ठ 66,67 पर प्रकाशित कर रहे हैं ताकि उपन्यास के कुछ और पहलू उजागर हो सकें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका की कथा प्रतियोगिता (जनवरी अंक-1, 1980) में बोसीदनी को तृतीय पुरस्कार मिला था. उसी युवा रचनाकार प्रियंवद की ताजा रचना—"ओ आनामा अद्रष्टा मंत्रकर्ता, तुम्हारी कथा अधूरी थी. आगे क्या हुआ, यह मैं बताता हूं. शाश्वत सत्य की अन्वेषिका यमी देह-सत्य को अपने जीवन के स्तर पर जी नहीं पायी और उसके होंठ नीले पड़ गये. मेरी बूबा की तरह जहर में डूबे दो नीले फूलों जैसे होंठ." यम और यमी के अवैध करार संबंधों में सत्य-असत्य के अन्वेषण और मानसिक द्वंद्व की शाश्वत गाथा—

होंठों के नीले फूल

प्रियंवद

...बूबा के होंठ बिल्कुल लाल थे और बूबा को मौत बहुत अच्छी लगती थी. बूबा हमेशा बहुत धीरे-धीरे मरना चाहती थी. जाड़े की कुनकुनी धूप जैसे पूरे बदन पर रेंगती है, बिल्कुल उसी तरह वह मौत को छूना चाहती थी.

"तुम मेरा गला दबा सकते हो?" बूबा मुस्कराकर पूछती.

"दबा सकता हूं." मैं अपनी हथेली में बूबा की सफेद नर्म गर्दन दबा लेता. बूबा चुपचाप दीवार से सर टेके आंख बंद किये रहती. मेरी उंगलियों का कसाव बढ़ता जाता, लेकिन बूबा के चेहरे पर कोई सिकुड़न नहीं आती. बूबा के गले की नसें उभरने लगतीं और बूबा का गले का वह हिस्सा नीला पड़ जाता. मैं अपना हाथ हटा लेता और बूबा के गले का वह नीला हिस्सा चूम लेता.

"तुम मेरी मां हो बूबा." मैं फुसफुसाया.

और फिर बूबा मेरा सिर अपने सीने में दुबका लेती. "डरपोक," हंसी देती और मेरी गरदन में उसके दांत धंस जाते.

बहुत पहले एक तपती दोपहर में एक पतंग के पीछे भागता मैं बूबा के घर में घुस गया था और बूबा ने मुझे रोक लिया मेरे हाथों में चप्पल, धूल से सना चेहरा, पसीने और मिट्टी में भरा बदन.

"कौन हो तुम?" बूबा ने मेरा हाथ पकड़ लिया था.

"वो पतंग". . .मैं बिल्कुल सन्न रह गया था तब बूबा को ... कहानी-किस्सों के पन्नों से फड़फड़ाती जैसे कोई राजकुमारी उतर आयी है. गोरा मुंह, लाल होंठ और लंबे बाल. हंसती है तो फूल झरते हैं. रोती है तो मोती. आंखें उदासी से कढ़ी हुई.

"इतने गंदे-संदे घूमते हो, मां नहीं डांटती?"

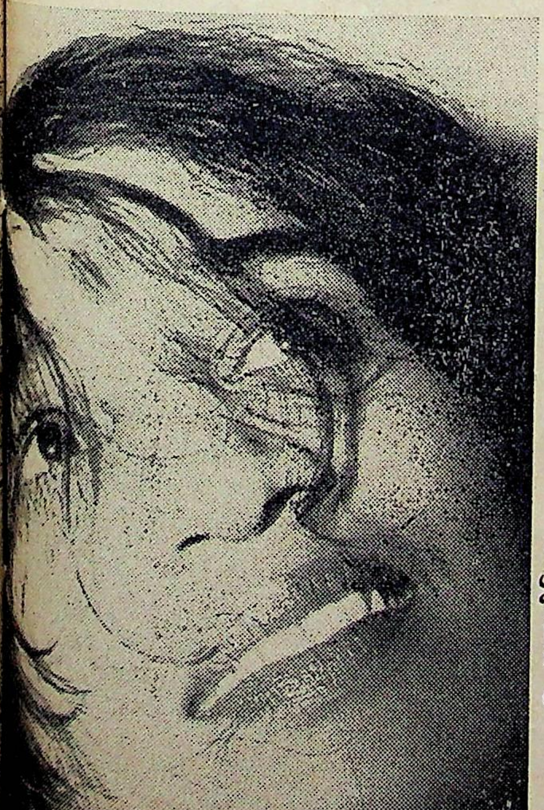

श्याम दीक्षित

"मां नहीं है."

"इतने छोटे हो और मां नहीं है!"

बूबा की आवाज भीग गयी थी और बूबा ने मुझे अपने बिल्कुल पास खींच लिया था.

"तुम रोज आओगे मेरे पास?"

"क्यों?"

"क्योंकि तुम्हारी आंखें बहुत अच्छी हैं, बिल्कुल सेटेनिक ब्राउन."

"तुम बिल्कुल राजकुमारी जैसी लगती हो." मेरा डर खत्म हो गया था.

"ओ बाबा. . . ." बूबा खिलखिलाकर हंस पड़ी थी.

"तुम क्या किसी का खून पीती हो?"

"ओ मां. . ." बूबा हंसते-हंसते गिर पड़ी थी.

"मेरा नौकर कहता है जो किसी का खून पीता है, उसके होंठ बिल्कुल लाल हो जाते हैं, तुम्हारी तरह."

बूबा फिर मेरा हाथ पकड़कर खींचती हुई मुझे अंदर ले गयी थी. मेरे हाथ-पैर धोकर उसने मुझे न जाने क्या-क्या खिलाया. सीने से लगाये न जाने कितनी देर दुलराती रही और मैं उस तपती दोपहर में अपने अकेले बचपन को हथेली में बंद किये धीरे-धीरे पिघलकर बूबा के अंदर सिमट गया था.

उसके बाद मैं रोज आता रहा. शाम होती और मैं भागता हुआ बूबा के घर पहुंच जाता. बूबा तभी नौकरी से वापस आती हांफती हुई. बाबा की दवा के पैसे बचाने के लिए एक-दो मील पैदल चलकर आती वह. बूबा अपना काम करती रहती और मैं कमरे की दहलीज पर चुपचाप बैठा बूबा को देखा करता. बूबा खाना बनाती, कपड़े धोती, बिस्तर लगाती, बाबा को खिलाती, दवा देती और फिर सुलाती भी. न जाने कितनी देर हो जाती. कभी-कभी मैं ऊंघने लगता. चौंकता तब, जब बूबा हिलाती.

"सो गया क्या?" बूबा वहीं बैठ जाती.

मैं जाग जाता. "इतनी देर कर देती हो कल से नहीं आऊंगा."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं बाबा. . ." बूबा मेरा चेहरा अपने हाथों में भरकर अपने लाल होंठ मेरे माथे पर रख देतीं, "कल से देर नहीं करूंगी बस . . ." और फिर मेरा सिर खींचकर अपनी गोद में रख लेती. थोड़ी देर में बूबा की उंगलियां मेरे बालों में, गले में, सीने पर एक बेचैनी के साथ घूमने लगतीं. साथ ही साथ बूबा हमेशा, चुपचाप कोई किताब भी पढ़ती रहती. अक्सर खलील जिब्रान की कविता— 'दि ब्यूटी ऑफ डेथ'. मेरे गाल पर जब कोई बूंद गिरती तब मैं चौंकता.

"तुम रो रही हो बूबा?" मैं उठ बैठता.

बूबा अपने आंसू पोंछ लेती.

"ऐसा क्यों होता है. सुख आदमी को छूता हुआ क्यों निकल जाता है. उसे अपने में समेटकर जम क्यों नहीं जाता, बर्फ की सिल्ली की तरह. . ."

मैं कुछ नहीं समझ पाता. बूबा को टुकुर-टुकुर देखा करता. बूबा फिर मुझे अपने सीने में दुबकाकर बड़बड़ाते हुए वहशियों की तरह चूमने लगती, "सुख केवल कोई क्षण होता है रे. मेरा वह क्षण तू है?" मेरा दम घुटने लगता और मैं फिर उसी तरह पूरे का पूरा पिघलने लग जाता.

"तुम मेरी मां हो बूबा. . ."

"हां, मैं तेरी मां हूं!" बूबा फफककर रो पड़ती. मैं वैसे ही बूबा के सीने पर सर रक्खे लेटा रहता और मेरा चेहरा बूबा के आंसुओं से भीगता रहता.

और तब मैं सोचा करता अपने नौकर की बात. वह राजकुमारी जितना रोती थी उतने ही उसके बाल लंबे होते जाते थे. बूबा के बाल इसलिए लंबे हैं, क्योंकि बूबा हमेशा रोती है.

▣

जमीन का वह टुकड़ा बिल्कुल लाल हो जाता था. गुलमोहर सारी रात बरसते और उसकी पंखुरी-पंखुरी से जैसे वह टुकड़ा खून से भीग जाता, बिल्कुल बूबा के होंठों की तरह.

जमीन के उसी सुर्ख टुकड़े के ऊपर हम बड़े होते रहे थे. मैं, बूबा, मेरे अंदर का आदमी और बूबा के अंदर की औरत.

"जानते हो, मुझे और तुमको किस चीज ने जोड़ा है." बूबा पूछती.

"नहीं."

"अपने होने के बेमानीपन ने. अपने अस्तित्व की निरर्थकता ने." न जाने तब कितनी रात बीत चुकी होती. बूबा हमेशा तब ऐसी ही बातें करती.

"हम दोनों एक-दूसरे के कंधों पर सर रखकर रोते हैं रे. एक-दूसरे के अकेलेपन को चुपचाप कुतरते हुए. यही वह जमीन है, जिस पर हम दोनों मिलते हैं."

मैं बूबा का हाथ अपने हाथों में ले लेता. बिल्कुल सूखी झुर्रियों वाला हाथ. बूबा के पूरे बदन से उसका हाथ बिल्कुल अलग था. जैसे किसी बूढ़ी औरत की हथेली काटकर बूबा के हाथों में जोड़ दी गयी है.

"तुम्हारा हाथ ऐसा क्यों है?" मैं बूबा के हाथ की उभरी नीली नसों पर उंगली फेरता रहता.

"हाथ हमेशा दिल की तरह होता है." बूबा हंस पड़ती, "तूने कभी ऋग्वेद का गीत सुना है?" बूबा मुझे अपने पास खींच ले

"कौन सा?. . ."

"यम और यमी का गीत?"

"नहीं. . . ?"

"जानता है तू. . .यम और यमी भाई-बहन थे. एक दिन य ने यम से पूछा, "तू मेरा कौन है?" "भाई", यम बोला. "तेरा क्या है?" यमी ने पूछा. "तुझे सुख देना. . ." यम बोला. "मुझे सुख दे," यमी ने याचना की.

"बूबा. . ." मेरा हाथ कांप गया.

"डरपोक. . !" खिलखिलाकर हंस पड़ी बूबा, "देहातीत हो सोच एक बार यमी की इस बात को. फिर जीवन दर्शन बना अपने जीवन के सारे मूल्यों का आधार."

"बूबा. . . ."

"हां रे, यमी की इस बात से अचानक उसका जीवन कि बड़ा हो गया है. कितना उन्मुक्त, व्यापक और स्पष्ट. ऐसा न क्या? यह दृष्टांत तो स्वयं में एक दर्शन है. यमी की दृष्टि कि निर्भीक और विस्तृत है. जीवन के छोटे-छोटे टुकड़ों में ज तुझको इसलिए बता रही हूं कि केवल तुझसे ही तो बोल पाती फिर तुझे तो अभी बहुत बड़ा होना है. सत्य की अन्वेषी, दृष्टि अभी से सीख ले. . ."

"लेकिन पाप?. . ."

"धत्. अगर पाप और पुण्य सत्य हैं तो सुख कुछ भी होता रे. और अगर सुख सत्य है तो पाप-पुण्य का कोई अ नहीं है. सुख की नित्यता तो हम निश्चित ही जानते हैं, इस पाप-पुण्य कुछ नहीं हैं.

"तो यमी की स्थिति. . ."

"हां, यमी की स्थिति मान्य है. यमी के जीवन की स मेरा आदर्श है."

"और रिश्तों का धर्म?"

"रिश्तों के नाम जीवन को बहुत छोटे-छोटे घेरों में देते हैं. आंखों में कपड़ा बांधे बैल की तरह आदमी उन्हीं घे घूमता रहता है. यह गलत है. एक बार में आदमी क्या सब नहीं भोग सकता? क्या मेरे और तेरे रिश्ते का कोई नाम है मैं तेरी सब कुछ नहीं हूं, मां, दोस्त, बहन. . .बोल. . ?"

"हां बूबा." मैं बूबा की हथेली की नीली नसें चूम "तुम मेरी इकलौती आस्था हो, मेरी रक्षिता हो मेरी कल्प मेरी आवाज कांपने लगती. बूबा मेरी निगाहों में तब न जाने कि ऊपर उठ जाती. ज्ञानी, गंभीर, ममत्वमयी बूबा.

"आ चलें. . ." बूबा उठ जाती.

गुलमोहर की सुर्ख पंखुरियां बूबा के बालों में उलझी होतीं

"एक बात पूछूं बूबा?" मैं ठहर जाता. "फिर यम ने किया?"

"उसका कोई महत्त्व नहीं है रे. देह का अस्तित्व तो कुछ का होता है बस. . ."

"अच्छा बूबा, तुम जो कुछ कहती हो, क्या सचमुच उन्मुक्त होकर कर सकती हो."

"शायद," बूबा हंस देती, "अपनी बूबा को समझा नहीं

"समझा तो बिल्कुल नहीं. रोज नयी बूबा को देखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूबा खिलखिला पड़ती, "यू सेटेनिक ब्राउन!" और फिर मेरी गरदन में बूबा के दांत धंस जाते.

कभी-कभी मैं सोचता कि बूबा इतनी चुप क्यों रहती है, क्यों जैसी बातें करती है, तो मुझे समझ में नहीं आता. एक दिन बूबा ने मुझे बताया था, "मेरी पूरी देह मुर्दा ख्वाबों से गुंथी है रे, और जब कभी उन ख्वाबों में से कोई ख्वाब करवट लेता है तो मैं बिल्कुल डरी हो जाती हूं. कहीं वह ख्वाब जाग न जाये. . ."

बूबा रो पड़ी थी फिर, और तब मुझे बूबा के पूरे बदन पर मरे हुए सपने फैले दिखायी पड़े थे. मुझे लगा था कि बूबा की देह का कोना-कोना हर वक्त कोई न कोई लड़ाई लड़ता रहता है और उन्हीं मरे हुए सपनों के बीच, कोने-कोने की लड़ाई के बीच मेरी बूबा बड़ी होती रही है. उसके बाद मैंने कभी कुछ नहीं पूछा. मैं जानता था. बूबा किसी जमीन का कोई ऐसा टुकड़ा चाहती है, जिस पर बूबा अपने पांव रख सके. थकी हुई हांफती बूबा अब और नहीं लड़ना चाहती और इसलिए जमीन का वह टुकड़ा कभी यमी की स्थिति होती, कभी खलील जिब्रान की 'दि ब्यूटी आफ डैथ', और कभी मैं.

बूबा उस रात सर्दी से कांप रही थी.

"अंदर चलें?" मैंने कहा

"नहीं. . ." बूबा ने अपना शाल और कसकर लपेट लिया. बहुत थकी लग रही थी बूबा. न जाने उंगली से क्या-क्या खींचती रही फर्श पर. मैं चुपचाप बैठा देख रहा था. मैं जानता था यही वह क्षण है जब अपने अस्तित्व की निरर्थकता के बोझ से बूबा का दम घुटने लगता है और बूबा सिर्फ मरना चाहती है. बिल्कुल धीरे-धीरे. मैं सोच रहा था कि बूबा मुझसे पूछेगी कि क्या मैं उसका गला दबा सकता हूं और मैं बूबा के गले पर अपना हाथ धर दूंगा.

"सुनो. . ." बूबा बहुत देर बाद बोली. बूबा की आवाज बहुत धीमी थी, "मैं महसूस करना चाहती हूं कि मैं हूं." बूबा सीधे मेरी आंखों में देख रही थी.

"बूबा . . ." मैंने बूबा के चेहरे पर ऐसी तनाव और थकान पहले कभी नहीं देखी थी. बूबा का चेहरा इस सर्दी में भी भीग रहा था. बूबा के साथ हमेशा से चलता हुआ मीलों लंबा अकेलापन और सन्नाटा भरती हुई शाम की ललछौंहीं, कुछ ऐसा ही बूबा के पूरे चेहरे पर फैला था.

"मैं अपने होने को पूरा, पर जीना चाहती हूं."

"मैं समझा नहीं बूबा. . ."

"तू मेरे लिए क्या कर सकता है?"

"कुछ भी."

"कुछ भी ? सत्य-असत्य से परे, सुख-दुख के बिना?"

"हां बूबा."

"मुझे चूमो." बूबा ने मेरा हाथ पकड़ लिया. बूबा की हथेली गीली हो रही थी. बूबा की आंखें धीरे-धीरे बलने लगीं.

"बूबा. . ." मैं डर रहा था बूबा की सूरत से. उदासी से कढ़ी बूबा की आंखें सिर्फ एक औरत की आंखें रह गयी थीं.

एक ऐसी औरत जो हमेशा से बूबा के अंदर थी, बूबा के साथ ही जीती रही, लेकिन बूबा ने उसे अभी अपने से बाहर झांकने नहीं दिया. वह औरत धीरे-धीरे बूबा के जिस्म की एक-एक नस में फैल गयी थी और आज वही औरत जब बाहर निकलना चाह रही थी तो बूबा की एक-एक पर्त एक-एक नस चटक रही थी.

मैं उठा और धीरे से मैंने बूबा का गला चूम लिया. बिल्कुल वही हिस्सा जो मेरे दबाने से नीला पड़ जाता था.

"मेरे होंठ." बूबा फुसफुसायी. बूबा ने अपनी आंखें बंद कर लीं. मैंने झुककर बूबा के होंठ चूम लिये. सुर्ख लाल होंठ. एक घूंट भरा हो जैसे मैंने खून का.

"और. . ." बूबा की बेचैन उंगलियां मेरी गरदन मेरे सीने पर रेंग रही थीं.

मैं फिर झुका और फिर एक घूंट भरा.

"और. . ."

"बूबा. . ." मैं हांफने लगा. मेरे चेहरे पर पसीना छलछला आया. मेरा बदन कांप रहा था. मुझे लग रहा था कि मैं अपने-आप से छिटककर अलग हो गया हूं और सिर्फ एक आदमी मेरे अंदर शेष रह गया है.

बहुत पहले मैंने पूछा था बूबा से कि यम ने क्या किया. . .! बूबा ने कहा था, उसका कोई महत्त्व नहीं है. महत्त्व है जीवन दृष्टि का, मूल्यों का और मैंने फिर पूछा था बूबा से कि मूल्यों के लिए तुम जिस तरह सोचती हो, उतना मुक्त होकर उनको जी सकती हो?

"शायद. . ." बूबा ने कहा था. मेरी वही बूबा मेरी इकलौती आस्था मेरे सामने बैठी थी. यमी की जीवन दृष्टि को आदर्श मानने वाली, शाश्वत सत्य की अन्वेषिका, पाप-पुण्य के अनास्तित्व और रिश्तों के धर्म की अध्येत्री, मेरी रक्षिता मेरी कल्याणी, मेरी मां.

"मझे सुख दे रे. .. मुझे विस्तार दे. . ." बूबा ने खींच लिया.

"बूबा. . ." मैं कुछ कहना चाहता था. लेकिन अचानक बूबा की आंखों में, होंठों पर, सकड़ों मरे सपने करवट बदलने लगे. बूबा की हांफती सांसों को किसी जमीन का एक टुकड़ा चाहिए था. जिस पर रुककर बूबा कुछ गहरी सांसें ले सके. मैं सिर्फ बुदबुदाकर रह गया. और मैं, सिर्फ एक आदमी, बूबा के, सिर्फ एक औरत के सीने पर हांफता हुआ गिर पड़ा.

सुबह जब मैं गया तो बहुत सन्नाटा था. बाबा कमरे में सो रहे थे. कमरे की दहलीज पर धूप का एक टुकड़ा रेंग रहा था. बूबा कहीं नहीं दिखी. मैं वहीं एक कोने में बैठ गया. कुछ देर में बूबा बाथरूम से निकली. वही पुरानी उदासी से कढ़ी आंखें. सूजी हुई. सारी रात रोयी थी शायद बूबा. होंठ भी कुछ छिले हुए और सूज रहे थे. मुझे देखते ही बूबा चौंक गयी. मेरी आंखें झुक गयीं.

"तू आ गया रे. देख तो मेरे होंठ कैसे नीले हो गये हैं. बिल्कुल जहर में डूबे. सारी रात तो धोया है मैंने इन्हें, लेकिन यह रंग छूटता ही नहीं." बड़बड़ाती हुई बूबा फिर नल पर चली गयी.

मैं फूट-फूटकर रो पड़ा.

"ओ अनामा अद्रष्टा मंत्रकर्त्ता, तुम्हारी कथा अधूरी थी. आगे क्या हुआ, यह मैं बताता हूं. शाश्वत सत्य की अन्वेषिका यमी देह-सत्य को अपने जीवन के स्तर पर जी नहीं पायी और उसके होंठ नीले पड़ गये. मेरी बूबा की तरह जहर में डूबे दो नीले फूलों जैसे होंठ. □

● **15/269 सिविल लाइंस, कानपुर.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटी हो गयी. थमा हुआ प्लेटफार्म बांध की तरह फूट गया. सामानों की गिनती करते, कुली खोजते लोग आवाजें देने लगे. मैंने मुड़कर देखा तो वह सुलो थी, सफेद और नीले छापे वाली साड़ी में सिकुड़ी, बेहद गुम और भरी हुई. विदा के लिए भीतर से अपने को तैयार करती. बार बार दूर पुल की ओर ताकती. शायद पुल का अंधेरा इंजन को कुछ देर और रोक सके. अंधेरा कुछ भी नहीं रोक पाता. लोग केवल अंधेरे में रुकते हैं. वह सोचती है. सचमुच वह सोचती है. . .

छाया : चित्रावत

सुलो और उसकी नदी

• अक्षय उपाध्याय

एक छोटी पतली-सी नदी बहती थी, उसके घर से सटी हुई. बच्चे तक खेल-खेल में उसे पार कर जाते, इतनी शांत और प्रेम से भरी नदी थी वह. कभी-कभार कोई छोटी डोंगी उसमें से होकर गुजरती तो नदी के लिए वह दिन उत्सव का होता और नदी के किनारे खड़ी सुलो के लिए भी, स्वप्न की तरह. लगता,जैसे नदी अकेली और उदास नहीं है.

नदी का कोई नाम न था. लोग अपने-अपने प्रेम से जोड़कर अलग-अलग नामों से उसे बुलाते.

बुलाते तो नदी भी बहकी बहकी सभी नामों से उनके पैरों के पास चढ़ी चली आती. सुलो ने भी एक नाम दिया था नदी को. कितनी बार मां ने, कितनी बार सहेलियों ने सुलो से पूछा था उसके दिये नाम को. सुलो थी कि बार-बार पूछने पर भी हर बार केवल खिलखिलाती, 'नहीं बताती मैं, मेरे नाम से तुम लोगों को क्या!" ठीक ही तो है, किसी के नाम से किसी दूसरे को क्या? नदी भी यही कहती. नदी और सुलो में खूब गाढ़ी छनती. घंटों वह वहां बैठी बतियाती. नदी के गांव के बारे में, मां और परिवार के बारे में, अपने बचपन के एक-एक पल को वह नाव बनाकर नदी में बहाती, अपने स्वप्न रचाती और नदी से उसके स्वप्न पूछती. उसके भीतर छिपे रत्नों के बारे में एक बार पूछा था उसने, "नानी तुम्हारे भीतर भी मोती हैं न!"

उस दिन पहली बार नदी ने अपने भीतर से एक सुनहरे रंगवाली छोटी मछली निकालकर सुलो के नन्हें हाथों में थमा दी थी.

वह समझ नहीं सकी थी कि इस सुनहरी मछली का क्या करे. इतनी खूबसूरत मछली को पकाया भी तो नहीं जा सकता और घर पहुंचते ही लोग इस नन्हीं जान के पीछे हाथ धोकर पड़ जायेंगे. उसने घबराकर नीम के नीचे खड़ी हो उस छटपटाती

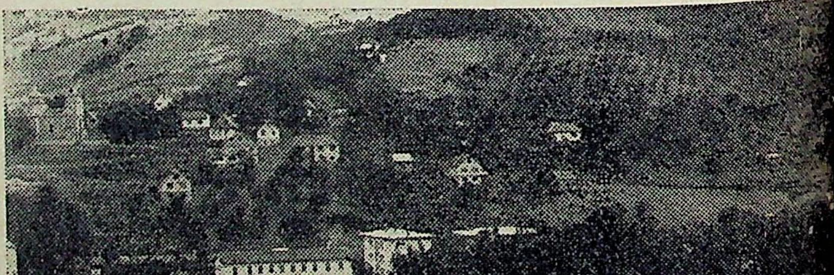

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनहरी मछली को वहीं अपने सीने में छिपा लिया. बस....

बस, धीरे-धीरे सुलो बड़ी हुई. छोटी-छोटी दो चोटियां अब एक में बदल गयीं और साथ-साथ बड़ी होती रही सीने में छटपटाती नदी की दी हुई सुनहरी मछली भी. नदी ने सुलो को उसके सुनहरे बचपन के बदले सिर्फ पानी से निकालकर छटपटाती सुनहरी मछली ही दी और अब वह सुलो छटपटाती है. . .पानी. . .पानी. . .

सुलो की नदी में आज तक कभी बाढ़ नहीं आयी. शायद इसी वजह से पूरा गांव उसे बिटिया की तरह प्यार करता और सुलो भी.

उस दिन छप छप करते उसने नदी के कान में कहा था, "ए, धान कट गये." नदी ने कहा, "अच्छा."

उसने कहा, "सारी लड़कियां गीत गाने लगी हैं...." नदी ने कहा, "तो!"

"अरे! सरसों फूल गयी है." नदी ने फिर कहा, "तो!"

सुलो को पहली बार नदी की अकल पर गुस्सा आया था. उसने नदी के कान ऐंठते हुए पूछा था, "अरी पगली, क्या तेरा गौना नहीं होगा?"

"धत्!"

और नदी के पहले खुद सुलो चौंक गयी. एकटक दूर डूबते सूरज को देखती रही. एक छोटी चिड़िया बहुत ऊपर पंख रोककर नीचे उतर रही है. सुलो की चोटी का रिबन खुल गया और नीचे उतर रही उस चिड़िया को बांधने की कोशिश करने लगा. "छोड़ न, मेरे कान छोड़." कलकलाती नदी ने जब पुकारा तो वह वापस लौटी. "क्या हुआ?" नदी हंसने लगी. सुलो नहीं हंस सकी. हंसना चाहती थी, पर पता नहीं क्यों नहीं हंसी.

"सुन." नदी ने पास बुलाया, "जब तेरा गौना हो तो मुझे याद करते हुए नये घर जाना. तब एक गीत सुनाऊंगी मैं तुझे, अपने गांव, सपने और गौने का गीत.

"सच.

"ठीक, मैं गौने पर नदी पार जरूर करूंगी," सुलो ने ताली बजायी और खो गयी. सुलो का गौना नहीं हुआ. नहीं हुआ तो एक दिन यूं ही बप्पा से पूछे बिना वह उसके साथ विदा हो ली. गौना करने लायक उसके बप्पा की हैसियत नहीं थी. गौने के

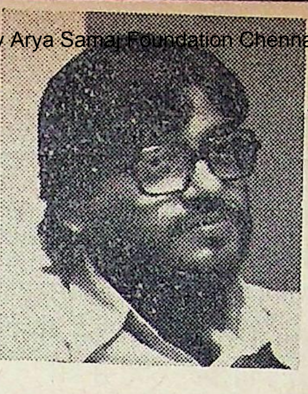

● अक्षय उपाध्याय

लिए सुलो का बचपन छटपटाता, मगर वह चुप थी. खुद सुलो नहीं समझ सकी कि यह क्या हो रहा है. सपने में देखे गये दृश्य केवल याद आते रहे, याद आती रही नदी, सुलो की नदी. वह केवल एक बार वापस अपनी नदी के पास जाना चाहती थी. गांव लौटना चाहती थी, पर बप्पा की आंख से जो नदी बही तो सब कुछ बह गया... खेल, गीत, खिलौने, छोटे-बड़े सभी सपने और सुलो भी.

यहां इतनी दूर पहाड़ के पास कोई नहीं है. अकेली दोपहर की तरह तपती सुलो इंतजार करती रही लौटने की. उसकी नदी में जो डोंगी आयी भी तो वह पूरी तरह खाली थी. उसे गीत गानेवाला वह माझी याद आता रहा, बचपन में जिसके सपने देखे थे. माझी का चमकता बदन और चमकती आंखें, पूरी पृथ्वी को घेरनेवाली उसकी आवाज, उसकी घनी दाढ़ी, उसकी सारी इच्छाएं. सब याद आतीं. सुलो रोती तो 'वह' चिढ़ता. उसके सपनों से सिगरेट सुलगाता वह, तमतमाता, गरियाता. जिस सुनहरी मछली को बचाने के लोभ में सुलो ने सीने में छिपा लिया था, वह उस सुनहरी मछली को सिर्फ पकते हुए देखना चाहता. उसके लिए भूख भगवान है. सुलो की आत्मा नहीं, शरीर चाहिए उसे. नदी की बात पर चीर देने की धमकी देता. वह ताने देता कि अभी भी गांव को गठरी की तरह लिये फिरती है. गौना तक नहीं करा सका बाप. गौना न होने का दुख सुलो को भी है, लेकिन वह आत्मा का दुख है, जीभ का नहीं. गौने के बाद इतना दुख बाट जोहता है, उसे नहीं पता. नदी ने भी तो कभी नहीं बताया उसे. फिर सोचती, नदी पार किये बिना वह नये घर को चली आयी, शायद इसी कारण वह जल रही है. बचपन की सुनहरी मछली भयंकर छटपटाती है....

दोनों बच्चियों को कलेजे से लगाये सुलो सोचती रहती. सोचती, क्या धान इसीलिए कटते हैं? क्या सरसों इसीलिए फूलती हैं? बच्चियों को कौन-सी कहानी सुनाये? पूछती है सुलो. "तुम अपनी नदी के बारे में कहो न इनसे."

"मगर नदी का गीत अगर ये भी न सुन सकीं तो फिर? तुम मर्दों के पास कोई नदी नहीं होती क्या?" "क्या बोलूं." "कुछ भी, सच या शायद झूठ ही."

"कुछ दिन और रुकते तो अच्छा रहता."

"जो अच्छा होता, वह हमेशा हो कहां पाता है, तुम्हारी लाख कोशिश के बाद भी मैं क्या अच्छी हो पायी?"

"ऐसा क्यों सोचती हो?"

"सोचने की आदत जो है. अब देखो न, सारा कुछ पता नहीं एक अनदेखी परीक्षा पर टिका है, पर वह तो कभी भी मैं पास नहीं कर सकी."

"उससे बड़ा मजाक मुझे दूसरा नहीं लगता."

"सब ठीक हो लेगा सुलो."

"तुम भी सांत्वना भर ही दोगे? आज भर रुक जाते तो अच्छा रहता. सारी नदियां बढ़ गयी हैं, खतरा हो सकता है."

"नहीं, ठीक है. इससे कोई फर्क नहीं पड़ता."

कभी कभी लगता, सुलो नहीं, नदी की दी हुई वह सुनहरी मछली बढ़ी हुई है, जिसे तमाम उम्र नदी से बिछुड़ने के गम में छटपटाना है, केवल छटपटाना.

उसकी ओर देखने पर लगा, चारों ओर सिर्फ पानी है, पानी. सुलो कुछ नहीं बोल सकी. धीरे-धीरे नमस्कार किया और हाथ हिलाती रही. फिर उसके रिबन खुल गये. इस बार पंख फैलाये ऊपर उड़ती उस नन्हीं चिड़िया को बांधने की कोशिश में थे वे.

दूर तक केवल विदा में हिलते दो हाथ थे. खिड़की के बाहर बरसात हो रही थी. सुलो की नदी का पानी वापस उसकी आंखों से होता हुआ नदी में मिल रहा था. □

● खादी भवन, 145 महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-700007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द गॉडफादर : रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप-दो

मारियो पूजो अपने घर का निकम्मा लड़का था. तिस पर तुर्रा यह कि उसने लेखक बनने की ठान ली. इस तरह वह 'राम' बनना चाहता था किंतु रक्ष-संस्कृति का सबसे बड़ा पंडित 'रावण' बनकर रह गया. आखिर क्या कारण था कि पूजो ने 'गॉडफादर' के रूप में एक नये रक्ष-संसार की सृष्टि की? चाहे पौराणिक पातालपुरी का अहिरावण हो या आधुनिक पातालपुरी कहे जाने वाले अमरीका का रावणी संस्करण 'गॉडफादर'—दोनों में फर्क क्या है? . . . पिछले अंक में आपने पढ़ा कि केवल सस्ते संस्करणों में ही दो करोड़ से अधिक से प्रतियों के बिक्री वाले 'गॉडफादर' की रचना कैसे और किन हालात में हुई. इस बार **द्रोणवीर कोहली** बता रहे हैं—'गॉडफादर' के अंदर की कहानी और उसकी बुनावट का पाठकीय किस्सा—

'द गॉडफादर' की कथा में अधिक उलझाव-भटकाव नहीं है. इसमें कुछ ऐसे माफिया घरानों के फलने-फूलने का आख्यान है, जिन्होंने अमरीका जैसे देश में भी लगभग सामानांतर सरकारें बना रखी हैं. इनमें भी डॉन वीतो कॉरलियोनी के घराने का आतंक सबसे अधिक है. डॉन वीतो कॉरलियोनी गॉडफादर अथवा धर्मपिता कहलाता है. संगठित अपराधवृति करने वालों का वह अधिष्ठाता है. उसके प्रति लोगों में इतनी श्रद्धा है कि मृत्युशैया पर पड़ा कैंसर-पीड़ित रोगी भी उससे प्रार्थना करता है : **"गॉडफादर!**

जगह पर उसकी बड़ी भारी कोठी है (आज कल मारियो पूजो भी इसी स्थान पर रहता है). वीतो इतना दानशील और हितैषी है कि कोई उसके दर से निराश नहीं लौटता. यदि अमेरिगो बॉनसेरा की बेटी का शीलभंग करने वाले दो अमरीकी युवकों को अमरीकी न्यायधीश दंडित करने में पक्षपात करता है—क्योंकि वे प्रभावशाली राजनीतिकों के बेटे हैं—तो उन्हें दंडित करने का बीड़ा डॉन उठाता है और सरकार या कानून उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते. यदि नैज़ोरिने जैसे नानबाई की बेटी किसी लड़के

किस्सा कोताह...तो यह है—गॉडफादर

यहां मेरे पास खड़े रहो. . .अगर यमराज भी आयेगा, तो तुम्हें देखकर भाग जायेगा. . .!"

परंतु ऐसे श्रद्धास्पद डॉन का जीवन भी अपने-आप में कम विषादपूर्ण नहीं था. बचपन में वह इटली से भागकर अमरीका आया था, क्योंकि वहां के माफिया सरदार ने उसके पिता और भाई को मरवा डाला था. फिर इस बालक की आंखों के सामने ही उसकी मां की हत्या की गयी थी. वीतो उन्हें चकमा देकर भाग न आता, तो अवश्यमेव मारा जाता, क्योंकि माफिया सरदार को भय था कि यदि वह बड़ा हो गया, तो अपने परिवार की मृत्यु का बदला लेगा.

वीतो अमेरिका आकर न्यूयार्क शहर की गंदी बस्तियों में बड़ा होता है. अपने विगत जीवन को भुलाकर शांतिपूर्वक रहना चाहता है, किंतु फानूची जैसा गुंडा उसे अपराधवृत्ति की ओर अग्रसर करता है, और आखिर, वीतो के ही हाथों मारा जाता है. इस घटना से सारी बस्ती में वीतो का दबदबा इतना बढ़ जाता है कि सब उसके मुरीद बन जाते हैं. फिर वीतो को दौलत और दादागीरी का ऐसा चस्का लगता है कि वह सारी दुनिया की धन-दौलत और ताकत बटोर लेने को आतुर हो उठता है. तरह-तरह के धंधे करके वह बड़ी-बड़ी कंपनियां और ऊंची-ऊंची इमारतें खड़ी करता है. जैतून के तेल के आयात पर उसका एकाधिकार है. सट्टा बाजार में भी उसकी धाक है. गैर-कानूनी तौर पर चलने वाले जुआघरों एवं नकली रिकार्ड बेचने वाली कंपनियों का वह संरक्षक है. 'लांग आइलैंड' जैसी

से प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है, तो उसके प्रेमी को अमरीकी नागरिकता दिलवाना डॉन के बायें हाथ का खेल है. यदि डॉन की छत्रछाया में रहने वाला प्रसिद्ध अभिनेता और गवैया एक प्रतिष्ठित फिल्म-निर्माता की बड़ी फिल्म में रोल लेने का अभिलाषी है, तो इस काम में भी डॉन उसकी मदद करता है. निर्माता अनिच्छुक है और इतना रसूख है उसका कि अमरीकी राष्ट्रपति तक उसकी पहुंच है. पर डॉन उसके छक्के छुड़ाने का रास्ता ढूंढ़ निकालता है. यह फिल्म-निर्माता प्रातः आंख खोलता है, तो

● महबूब

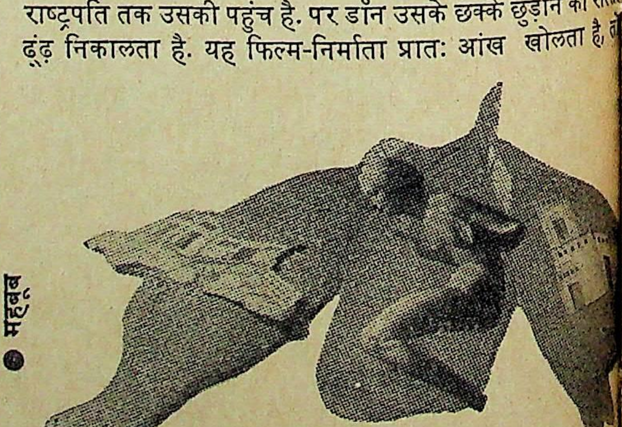

● कपोल-कल्पित रक्ष-संसार का बेतुका घर-परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेडरूम के फर्श पर उसके लाखों रुपये मूल्य के प्रिय घोड़े का कटा हुआ सिर रखा होता है.

इस तरह, डॉन पिस्तौल-बंदूक के साथ-साथ त्रास के मनो-... से भी अपने विरोधियों को पस्त करता है. सब उसकी मुट्ठी —पुलिस, जज, राज्यों के विधायक, सीनेट-सदस्य, मजदूर नेता, डॉन तथा अन्य अपराधजीवी घरानों का इतना ... है कि लगता ही नहीं कि न्यूयार्क जैसी जगह पर पुलिस-... नाम की कोई चीज है भी. कानून को ये लोग नपुंसक और ...ड़ी का समझते हैं. अपने कानून ये लोग आप बनाते हैं. डॉन का बेटा माइकेल—जो आगे चलकर गॉडफादर बनता है, ... है: **"जिस समाज में हम रहते हैं, उसके रीति-रिवाजों को ...ता स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि ये रीति-रिवाज उस व्यक्ति के लिए बंधन समान हैं. . .वह स्वयं को उन महापुरुषों ...कक्ष मानता है जिनमें राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, सर्वोच्च ...य के न्यायाधीश आदि सम्मिलित हैं. फिर भी, उसका अंतिम ...—इस समाज में शक्ति सामर्थ्य प्राप्त करके प्रवेश करना, ... यह समाज वास्तव में उन लोगों को संरक्षण प्रदान नहीं जिनमें अपनी शक्ति नहीं होती."**

डॉन वीतो को सबसे बड़ा खतरा तातागिलया जैसे घराने ...से तुर्की मूल के खूंखार सोलोजो का समर्थन मिला हुआ है. ...य वीतो का संघर्ष चलता रहता है. तातागिलया घराने ...ट क्लब हैं, जो वास्तव में वेश्यालय और नशीले पदार्थों ... है. आपसी संघर्ष में डॉन वीतो बुरी तरह घायल हो जाता है ...नाक्रम ऐसा मोड़ लेता है कि डॉन वीतो अपने घराने को बचाने ... बाकी सब घरानों से समझौता करता है.

न आदमी, न औरत, सिर्फ शरीर!

...ं यही इस उपन्यास का ताना-बाना है. इसमें आपको ...से विलक्षण पात्र और घटनाएं मिलेंगी. उपन्यास के ...रिच्छेद में ही आपको पूज़ो एक ऐसे पात्र से परिचित कर-... जिसमें अतिमानव जैसी सेक्स-शक्ति है. और यह शख्स ...ई नहीं, डॉन वीतो कॉरलियोनी का सबसे बड़ा बेटा ... है. यह लंबा-तड़ंगा, छहफुटा जवान बेहद पौरुषपूर्ण ...क्षम दिखाया गया है. उसकी इस साम्थर्य का नमूना ...के लिए लेखक ने अवसर भी अद्‌भुत चुना है. . . .सांतीनो ... बहन का विवाहोत्सव है. स्वागत-समारोह के लिए मेहमान ... हैं. दुल्हन सजी-संवरी बैठी है. सांतीनो एकाएक आता है ...हन की बगल में बैठी उसकी सहेली को हाथ से पकड़कर ... एक कमरे में ले जाता है. . .और खजुराहो की युगल मूर्तियां ...मने शरमाने लग जाती हैं. यहां तक कि उसकी पत्नी ...मे इतनी त्रस्त रहती है कि उसके साथ हम-...होने से कतराती है. ऐसा नहीं कि सांतीनो शारीरिक ... ही पुष्ट है, उसका हृदय भी बड़ा है. और लेखक उसके ...का बखान भी यौन प्रतीकों के माध्यम से ही करता है. ...ने हॉलीवुड के घिनौने संसार का चित्रण करते हुए भी ...सा ही प्रवृत्ति का परिचय दिया है. हॉलीवुड के धनकुबेरी ...ाज का जो चित्रण पूज़ो ने किया है, उसे पढ़कर लगता ... वहां सभ्यता-संस्कृति नाम की कोई चीज है. पूज़ो

● गॉडफादर : सेक्स और हिंसा की शतरंज पर खेलता मनमाना मोहरा — छाया : ज्ञान दीक्षित

बताता है कि फिल्म-जगत के कलाकार हतशक्ति हो गये हैं—मानसिक और शारीरिक, दोनों रूपों में. इसलिए हर जुम्मे के रोज वे एक ऐसी पार्टी करते हैं, जिनमें सब कलाकार मन-माफिक साथी चुनकर हम-बिस्तर होते हैं. ऐसी पार्टी में होने वाली गुफ्तगू की बानगी कुल जमा यही बताती है कि वहां आने वाले लोग न आदमी हैं, न औरत, बस केवल शरीर हैं और कुछ भी नहीं.

परंतु इससे भी कुरुचिपूर्ण स्थल है—अकादमी पुरस्कार वितरण समारोह. वहां पर अचानक कोई साहब दूर की कौड़ी लाते हैं और सुझाव देते हैं कि पुरस्कार पाने वाले मर्द और औरत सार्वजनिक संभोग करें. तत्काल उस औरत को विवस्त्र कर दिया जाता है. दूसरी औरतें जाह्नी फोंटेन को भी निर्वस्त्र कर देती हैं. गनीमत है कि लेखक यहीं तक आता है और बताता है कि इतने में ही जाह्नी का कज़िन, आगे बढ़कर जाह्नी को कंधे पर उठाकर वहां से भाग लेता है. पूछा जा सकता है कि क्या ये दृश्य मात्र उत्तेजित एवं पुलकित करने की गर्ज से ही नहीं जोड़े गये?

एक प्रसंग है—इसी जाह्नी फोंटेन और एक महत्वाकांक्षी लड़की शेरोनमर का एकांत डिनर. जाह्नी के हाथ में पेग है. खाली हाथ लड़की की गोद में है. . .! इसके बाद उस हाथ की उत्तेजक क्रियाओं का जिक्र है और इस जिक्र की इंतहा पर आकर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़की टिपिकल नारी की तरह बिदक जाती है : "नहीं, नहीं, मैं उस किस्म की लड़की नहीं हूं. . .!"

एक स्थल पर डॉन का साथी लूका ब्रासी नामक नर-पिशाच अपने दो विपक्षियों को बांधकर उनकी हत्या करने जा रहा है. दोनों के मुंह में उसने तौलिए डाल दिये हैं. लूका ब्रासी कुल्हाड़ा लेकर पहले एक आदमी के पैर काटता है, फिर घुटनों से टांगों को और फिर धड़ के निकट से जांघों को. निकट पड़ा दूसरा आदमी दहशत के मारे ही तौलिया निगल जाता है और दम घुटने से उसकी मृत्यु हो जाती है.

कैसे-कैसे घिनौने संस्कार!

इन वीभत्स चरित्रों के साथ-साथ कुछ विचित्र चरित्र भी हैं. जैसे आपको नैज़ोरिने जैसा बाप मिलेगा जो अपनी बेटी और उसके प्रेमी एंजो की निकटता को देखकर अपने मुंह से यह बात कहता है : 'द यंग रास्कल्स हॉट लोफ वुड बी इन हर अॅवन!" बेशक अमरीकी स्लैंग में 'बास्टर्ड', 'एस. ओ. बी.' (सन आफ ए बिच) तथा चतुराक्षरी शब्दों का प्राचुर्य है और उनका आम इस्तेमाल होता है, पर हमारे संस्कार ऐसे नहीं कि कोई बेटा अपनी मां की डांट खाकर उसे ऐसे बेहूदे शब्दों में झिड़के या कोई छोटा भाई अपने बड़े भाई को 'लाउज़ी बास्टर्ड' या 'सन आफ ए बिच' कहे. क्या यह सब वातावरणजन्य संस्कार नहीं हैं?

"द गॉडफादर के पात्रों और घटनाओं का विश्लेषण करने से एक खतरनाक बात उभरकर आती है. वह यह है कि इसमें हिंसा करने वाले कुमार्गगामी पात्र फलते-फूलते ही नजर आते हैं. जैसा कि अपराध-प्रधान उपन्यासों में होता है, बुराई का अंत बुराई में नहीं होता. डॉन वीतो कॉरलियोनी को ही लीजिए—अपने जीवन में उसने कितनी हत्याएं करवायी होंगी, पर कोई उसकी मूंछ का बाल नीचा नहीं कर सका. अपराधवृत्ति करके वह करोड़ों की संपत्ति बटोरता है और सुख भोगता है. अंत में उसकी मृत्यु भी होती है, तो स्वाभाविक. अपनी कोठी में बागबानी करते हुए वह दिल के दौरे से मरता है. उसके बाद उसका उत्तराधिकारी बेटा माइकेल भी पापमय जीवन के सुख भोगता है, हालांकि कभी उसने अपनी अमरीकी प्रेमिका से कहा था कि वह अपने बच्चों पर वैसा असर नहीं पड़ने देगा जैसा असर उसके ऊपर उसके पिता का पड़ा है. लगता है कि डॉन की मृत्यु के बाद वह इस जीवन का त्याग कर देगा. पर इस पंकिल जीवन में वह इतना लिप्त है कि नरसंहार किये बिना उसका अस्तित्व ही अक्षुण्ण नहीं रह सकता. इस तरह वह अपने घराने की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करता है.

आखिर ऐसा क्यों ? मारियो पूज़ो ने किस उद्देश्य से अपने उपन्यास का ऐसा ताना-बाना बुना ?

घूस लेने के फायदे !

इसका उत्तर आपको स्वयं मारियो पूज़ो के लेखन से ही मिल जायेगा. मारियो पूज़ो की यह अद्भुत दलील है कि अपराधवृत्ति एवं भ्रष्टाचार ने अमरीकी समाज को न केवल भौतिक दृष्टि से बल्कि मानसिक दृष्टि से भी सबल बनाया है. भ्रष्टाचार से अमरीकी अर्थव्यवस्था स्वस्थ हुई है. यह न समझिए कि यह मजाक में कहीं गयी बात है. इसका स्पष्टीकरण करते हुए पूज़ो ने बताया है कि सुखी जीवन का रास्ता भ्रष्टाचार होकर जाता है. यदि सारे कर्मचारी अपने भाग्य सहारे बैठे रहें, तो सारी अर्थव्यवस्था सड़-गल नहीं जाये पूज़ो ने यह अंदाजा लगाया है कि अमरीका में केंद्र सरकार के प्रतिशत कर्मचारी और राज्यों तथा निगमों के बीस प्रति कर्मचारी घूसखोर एवं भ्रष्ट हैं. पुलिस के कर्मचारी भी घूस हैं. और पूज़ो की नजर में यह अनुचित नहीं है, क्योंकि वे अपना जो जोखिम में डालते हैं. फिर उसका कहना है कि घूस और भ्रष्टा से कमाया हुआ 'काला धन' अकारथ नहीं जाता. भ्रष्ट कर्मचारी धन सुरा-सुंदरी आदि पर ही व्यय नहीं करता, बल्कि उपनगरों खुली हवा में नये मकान बनवाता है. इसका फायदा यह होता है उसके बच्चे गंदी बस्तियों के घिनौने वातावरण से निकलकर स्व वातावरण में पलते हैं और कॉलेजों में जाकर उच्च शिक्षा प्रा करते हैं. फिर वे डॉक्टर, इंजीनियर आदि बनकर समाज की सम में योग देते हैं. भ्रष्टाचार से कार्यक्षमता भी बढ़ती है. इसके लि पूज़ो ने उदाहरण देते हुए लिखा है—**मान लो, एक कर्मचारी तीन बच्चे हैं. कम वेतन के कारण उसका जीवन दूभर हो गया उसका तबादला एक ऐसे विभाग में हो जाता है जहां घूस मिलने गुंजाइश है. बस, वह धीरे-धीरे उच्च मध्यमवर्ग में जा पहुंचता नया मकान बनवाता है. नयी ब्यूक गाड़ी खरीदता है. इ अमरीकी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता है. यही नहीं, घूसखोर आदमी का व्यक्तित्व भी निखर जाता है. वह औ सौम्य, सौहार्दपूर्ण हो जाता है! दफ्तर में फाइलें दबाकर नहीं रख घूस लेकर तुरत-फुरत काम निबटाता है. इससे उसका भी और काम कराने वाले का भी भला, जो महीनों तक लटका रहता. इसी सिलसिले में पूज़ो यह सवाल भी पूछता है कि यदि ऐसे शख्स को भ्रष्ट कहते हैं, तो उस एडमिरल या युद्ध में वीर पदक पाने वाले सैनिक को क्या कहेंगे जो सेवामुक्त होने के येन-केन-प्रकारेण बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों में लाख डालर की पगार पर बहाल किये जाते हैं?**

किसी भी घटना प्रधान एवं सनसनीखेज कथा की एक कसौटी यह है कि वह पाठक को कितना कायल करती है, कहां तक साथ लेकर जाती है, कहां तक विश्वसनीय है. कहना न होगा यह गुण 'द गॉडफादर' में विद्यमान है. यदि यह न होता, लोग इस उपन्यास को पढ़कर इस निष्कर्ष पर क्यों पहुंचते मारियो पूज़ो इसी कारण इस उपन्यास में विश्वसनीयता ला है, क्योंकि पूज़ो को माफिया की दुनिया का निकट से परिचय कुछ लेखकों का तो यह भी आरोप है कि पूज़ो भी किसी ऐसे का एक सक्रिय सदस्य था. यही नहीं, यह भी कहा जा रहा है माफिया ने उसे दस लाख डालर यानी लगभग एक करोड़ की रकम देकर उससे यह उपन्यास लिखवाया. परंतु ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि है उसका माफिया वालों से कोई नहीं और यह सारा उपन्यास मात्र अनुसंधान करके लिखा है

लगता है, बात वही है, जो एक वेश्यगामी लेखक के होती है. वह वेश्यावृत्ति के बारे में प्रामाणिक सामग्री देता है लोकभय से स्वीकार नहीं कर सकता. . .और कहता है कि तो सुन-सुनाकर ये किस्से गढ़े हैं!

● **ई-163, ग्रेटर कैलाश-II, नयी दिल्ली—110048**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपबीती

हर आदमी की जिंदगी में कुछ ऐसे हादसे गुजरते हैं जो वर्षों तक दिलो-दिमाग पर हावी रहते हैं. कभी-कभी तो वे पूरे सोच को प्रभावित करते हैं. ये हादसे सुख-दुख, भय-अभय, घृणा-प्रेम, वीभत्स-जुगुप्सा, रोमांस-रोमांच, किसी भी तरह के हो सकते हैं. इन हादसों को रेखांकित करेगी लेखकों-पाठकों की 'आपबीती', जिसकी शुरूआत इस अंक से की जा रही है.

कफन और मौत

■ शंकर दयाल सिंह

बात 1954-55 की है. 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' का छात्र था और हर काम के लिए मन में जोश रहता था. एक दिन सवेरे पहर जब मैं दातून कर रहा था कि एक भोला-भाला आदमी रोता हुआ आया. पूछने पर उसने बताया कि उसके पिता का निधन हो गया है तथा उसके पास कफन के लिए भी पैसा नहीं है. कहकर वह और भी रोने लगा. मैंने उसे धीरज दिया तथा पांच-सात लड़कों की टोली लेकर होस्टल के हर कमरे में कफन के लिए पैसा

● शंकर दयाल सिंह

जुटाने में लग गया. थोड़ी ही देर में पचासेक रुपये हो गये.

उस निरीह आदमी ने यह भी बताया कि लाश ढोने के लिए चार आदमी भी नहीं हैं. हमने सोचा कि जब इतना किया तो यह भी क्यों न कर दूं कि चलकर लाश को भी दफना दूं. जब तीन-चार साथियों को हमने इस काम के लिए तैयार किया तो वह बोला, "इतना मदद हमार होई गवा, आप पढ़ाई हर्ज न करें. हमका इ पइसा दे दें, कउनो तरह हम लहास फूंक लेब."

लेकिन हमें तो समाज सेवा की धुन सवार थी, अतः हमने कहा, "नहीं, चलो, इस काम का बीड़ा लिया है तो उसे अंतिम दम तक पूरा करेंगे." और हम सभी तांगे से पांडे धर्मशाला के पास पहुंचे, जहां उसने बताया था कि लाश पड़ी है. वह आदमी भी साथ था. हम तांगे से उतरकर पैसा देने लगे, तब तक वह अंदर गया और हम जब अंदर जाकर उसे खोजने लगे, तो न वह मिला न कोई लाश मिली.

किसी के मरने अथवा लाश के बारे में पूछने पर धर्मशाला का मैनेजर बोला, "आप लोग सब भोले हैं. यह काशी है, काशी. कितने हरामखोरों का बस यही काम है. कितना पैसा उसने लिया?"

जब हमने मैनेजर को पूरी बात बतायी तो वह कुछ आश्वस्त हुआ, "चलिए, साले को एक पैसा भी हाथ नहीं लगा."

आज बीस-तीस साल बीत जाने पर भी उस घटना की स्मृति ऐसे भयावह रूप में मन पर है कि आज यदि कोई सही व्यक्ति भी कफन के लिए मदद मांगता है, तो वही घटना याद हो आती है तथा सोचने लगता हूं कि सही मांग रहा है या गलत.

किसी की ठगी या धोखाधड़ी कितने गरीबों का नुकसान कर जाती है. □

एक कमरे की कीमत

■ निर्मल कुमार मिश्र

एम्सटर्डम (हालैंड) की याद से एक दिलचस्प वाक्या याद आता है.

मैं पेरिस से एम्सटर्डम पहुंचता हूं. अब रहने की व्यवस्था करनी है. मैं एक होटल को फोन करता हूं, "क्या आपके पास ठहरने के लिए कमरा होगा?"

"ऊं..ऊं...कोशिश करूंगा, आप आ जाइए." उधर से बुझी-बुझी आवाज आयी.

मैं होटल की ओर चल पड़ता हूं. काउंटर पर एक गंजा-सा घनी मूंछों वाला आदमी मोटे फ्रेम का चश्मा चढ़ाये अपनी नजर नीचे किये किसी वस्तु पर यूं गड़ाये बैठा है मानो उसे किसी चीज की सुध ही न हो.

मैंने अपना गला साफ करते हुए कहा, "मुझे एक कमरा चाहिए."

"तो यही आपकी समस्या है? मगर मेरी भी एक समस्या है..आप मेरी मदद करें तो मैं भी आपकी मदद कर दूंगा."

काउंटर के नीचे झुका और शतरंज का एक बोर्ड उठाकर मेरे सामने रख दिया. मोहरे खास-खास जगह पर पड़े थे. उसने मुझे उन मोहरों की ओर इशारा करते हुए कहा, "शह पड़ी हुई है, मात होने से बचाना है आपको....यही मेरी समस्या है...आप इसे सुलझाइए, मैं आपके लिए कमरे का बंदोबस्त करता

● निर्मल कुमार मिश्र

हूं." यह कहकर वह अंदर चला गया. लौटकर आया तो उसके हाथ में चाबी थी.

"क्या बात बन गयी?" उसने पूछा.

"जनाब, बात कैसे बनेगी. मुझे तो शतरंज खेलना ही नहीं आता."

वह मेरी ओर देखकर मुस्कुराया और चाबी थमाते हुए बोला, "जब आपने फोन किया, उस वक्त मेरा ध्यान भंग हो गया और मैंने गलत चाल चल दी, जिसकी वजह से शह पड़ गया. शह आपके द्वारा पड़ी है तो आपको ही इसका हल निकालना होगा." यह कहते हुए वह ठठाकर हंस पड़ा.

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अपने ऊपर पड़ी इस शह से मुक्ति कैसे पाऊं! ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पके धान की मीठी गंध खेतों में फैलने लगी. सुनहरी बालियों की आवाज वंदना की घंटियों से भी अधिक पवित्र और प्रिय बनकर घर-घर गूंजने लगी. जाड़ा भी जरा तेज हो गया. रात में गिरने वाली ओस की बूंदें जोर होते-होते चादर-भीगी वर्षा का आभास देने लगीं. अब गांव से उठने वाला धुआं हवा में मिलकर लुप्त नहीं होता है, बांस की फुनगियों के निकट जाकर कुछ देर बादलों की तरह अटक जाता है और तब तक अटका रहता है, जब तक अंधेरा खूब घना नहीं हो जाता.

यह सब धीरे-धीरे होता है. किसी को कुछ पता नहीं चलता और यह सब हो जाता है. आषाढ़-सावन तक धान रोपा जाता है और देखते-देखते एक दिन फूल निकल आते हैं और फिर बालियां. गीता ऐसी ही बातें सोचती गांव की ओर आ रही थी. दूर के खेत देखकर लौट रही थी. प्रकृति के पांव की आहट किसी को भी नहीं होती. देखते-देखते धान कट जायेगा, बीच-बीच में जौ-गेहूं के खेत हंस उठेंगे और चारों ओर कुहासा छाने लगेगा और लोग शाम सवेरे अंगीठी तापने में सुख पायेंगे.

दूर से किसी ने टोका, "सूझता नहीं, खेत बोया हुआ है." गीता को अपनी गलती का एहसास हुआ. वह मेंड़ छोड़कर सीध में निकल जाना चाहती थी. लौटकर मेंड़ पर आयी. मन ही मन खेत वाले को बुरा कहा. आगे धूल भरी सड़क थी. शंकर सिंह का आम का बगीचा था. बगीचे से लगा जगेसर मंडल का पटसन का. ये बीज वाले पटसन थे, ड़ेढ़ मर्द ऊंचे, फलों से लदे, माघ तक पकने के इंतजार में खड़े रहने वाले. गीता ने जैसे ही बगीचे को पार किया, पीछे से पैरों की धप-धप आवाज आयी. पलटकर देखा, बिजली.

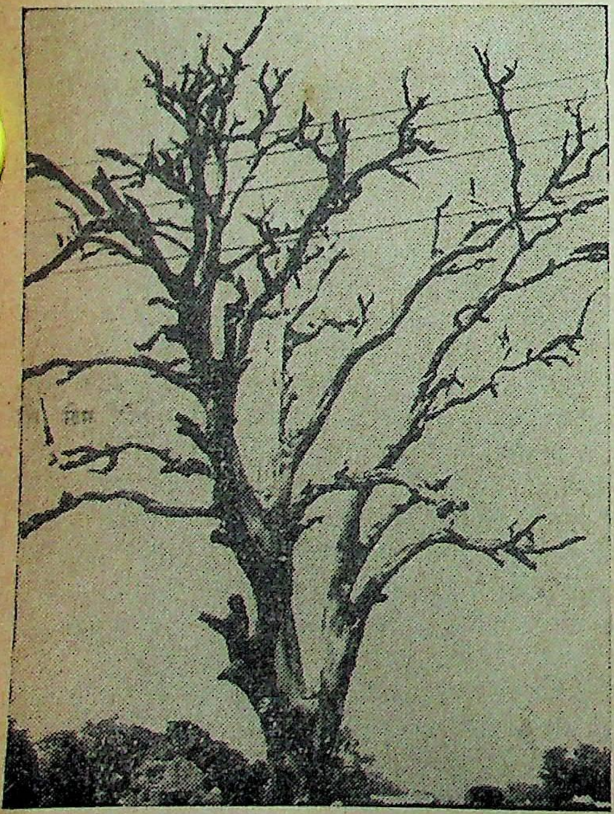

छाया : ज्ञान दीक्षित

"तुमको ही देखकर दौड़ा आ रहा हूं. आज चार दिन बाद घर से निकली हो न!"

"अब तो शायद वह भी संभव नहीं है. मेरा घर से निकलना अब मां पसंद नहीं करती."

"तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं. इधर चलो."

"नहीं."

"नहीं."

"अच्छा, चलो."

और, दोनों तेजी से पटसन के खेत के भीतर हो गये. बीच खेत में पीपल का एक बड़ा-सा पेड़ था. दोनों वहीं पहुंचे. पेड़ के आस-पास काफी परती जमीन थी. दोनों वहीं बैठ गये.

"बिजली!"

"मैंने तुम्हें मना किया है न! मेरा नाम बिजेंदर है, बिजली नहीं. यह जनाना नाम क्यों बोलती है?"

"पूरा गांव बोलता है."

"गांव साला तो बहुत बात बोलता है."

"तो झूठ बोलता है?"

"अभी तो नहीं, लेकिन आज न सही, कल यह झूठ..."

"बोलने दो."

"यह पीपल का पेड़ बहुत पुराना है."

"तुम इसके पत्ते गिनो."

"और तुम?"

"मैं जमीन पर रेंगतीं चींटियां."

किंतु इन्हें गणित का ज्ञान बहुत ही कम था. अंधेरा घिर आया

फांसी

लेकिन गिनती में कोई वृद्धि नहीं हुई. पीपल के दरख्त पर रैन-बसेरे के लिए परिंदों की टोलियां आने लगीं.

"गीता, हमें इस गांव को छोड़ देना चाहिए."

"बिजली!"

"तुमने फिर बिजली कहा."

"तुम मर्द हो?"

"संदेह है?"

"तो फिर मर्द की तरह ले चलो."

"अ . . च्छा. . . आ. . .ले चलूंगा."

"आओ, हम लोग कसम खायें पीपल के पेड़ को छूकर. अगर हमारे पास कोई लोहे की कील होती तो हम पेड़ में ठोंक देते, कसम के तौर पर."

"और पेड़ पर रहने वाला ब्रह्मपिशाच लोहे के डर से छोड़कर भाग जाता."

"इस पेड़ पर ब्रह्मपिशाच रहता है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हर पीपल के पेड़ पर रहता है."

"बाप रे, इतने ब्रह्मपिशाच आते कहां से हैं?"

"आते कहां से, जितना भी भूखा और अतृप्त ब्राह्मण मरता है, सब पिशाच बनता है."

"और ब्राह्मणी?"

"मैं तुम्हें ब्राह्मणी रहने ही नहीं दूंगा."

"क्या करोगे?"

"देवी बना दूंगा."

"सच."

"देखो, पीपल में लोहा ठोंककर कसम खाता हूं और छुरी तोड़कर तोड़ता हूं?"

छुरी की नोंक पीपल के खुरदुरे चाम और सख्त हड्डी में फंसी. बिजेंदर ने झटका देकर तोड़ दिया. खट् की हल्की-सी आवाज हुई. ऊपर परिंदों के पंख फड़फड़ा रहे थे और पीपल के पत्ते हिल रहे थे, अविराम.

और, पीपल के पत्ते जैसे कांपते कलेजे से गीता गन्ने के खेत से बाहर निकली. तेजी से घर की ओर भागी. अंधेरा लगभग घिर चुका था. धुंध और धुआं की परतों के बीच घिरा हुआ गांव धीरे-धीरे विश्राम की ओर बढ़ रहा था.

गीता सीधे घर पहुंची. मां ने रोज की तरह आज भी ज्यादा देर तक बाहर घूमने से परहेज करते हुए डांटा. दूसरे दिनों गीता मां के उपदेश का प्रतिवाद या व्यंग्य करती थी, किंतु आज उसने कुछ भी नहीं कहा. वह गंभीर बनी रही.

•मधुकर गंगाधर

हाथ-पांव धोकर चिराग जलाया. तुलसी चौरा पर चिराग रखकर मस्तक टेके, ईश्वर से प्रार्थना करने लगी. प्रार्थना के लिए उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकला. मन की आंखों के आगे बिजेंदर की आकृति उभर आयी.

उस रात उसने बार-बार अपने को पीपल के दरख्त के निकट पाया—कई रूपों में. . .कई मनोभावों में.

दूसरे दिन, बड़े सवेरे, घर से पूरब तरफ बहुत तेज हल्ला हुआ. गीता भी घर से बाहर आयी. गीता मां के निकट पहुंची. मां ने प्रश्नभरी आंखों से बेटी की ओर देखा. गीता ने कहा, "मैं अभी देखकर आती हूं."

गीता बाहर आयी. उसके दरवाजे की बगल में महतो का बड़ा-सा दरवाजा है, उसी के आखिरी छोर पर हल्ला हो रहा था. वहां का दृश्य देखकर वह कांप उठी. गांव का सबसे धनी व्यक्ति बिलोचन महतो, हाथ में बंदूक लिए खड़ा था. उसके आस-पास तीन-चार आदमी खाली हाथ थे. सामने लगभग सौ आदमी थे. कुछ खाली हाथ, कुछ के हाथ में भाला और गड़ासा आदि. सबसे आगे बिजेंदर था—खाली हाथ. उसके अलग-बगल के लोगों के हाथों में हथियार थे.

बिलोचन महतो ने बंदूक को और ज्यादा मजबूती से पकड़ते हुए कड़ककर कहा, "गिदर-भभकी से मुझे मत डराओ. गांव को नक्सलवाड़ी बनाने चले हो. यहां से भागो, वर्ना गोली चला दूंगा."

बिजेंदर थोड़ा और तन गया. महतो से भी कड़क-आवाज में कहा, "तो मारते क्यों नहीं गोली. हम लोग किसी नक्सलवाड़ी को नहीं जानते. तुम्हारे जैसे जालिम जमींदार हिंदुस्तान के हर गांव को नक्सलवाड़ी बना देंगे. तीस रुपये में गाय नहीं ली जाती है. रुपये वसूल करने के लिए कोर्ट कचहरी है. तुम और तुम्हारे मुंशी मिलकर सारी बातों का फैसला कर लेंगे तो कचहरी के हाकिम क्या तुम्हारी भैंसों के वास्ते घास काटेंगे? राम रतन की गाय खोल दो, वर्ना जबर्दस्ती ले जायेंगे. बंदूक तानने का जमाना चला गया."

किसी ने पीछे से आवाज लगायी, "ओय बंदूक वाले, इस एक पिटपिटियन से कितने को मारोगे?"

गीता के मन में आया कि वह दौड़कर उनके बीच जाये और बिजेंदर को अलग खींच ले जाये और उसे समझाये कि ऐसा नहीं कहना चाहिए—महतो बड़ा जालिम आदमी है, वह आसानी से गोली मार सकता है, लेकिन उसे लगा कि बिजेंदर ने जो कुछ भी कहा, वह तो ठीक ही है—किसी न किसी को तो कभी न कभी महतो से ऐसी बातें कहनी ही चाहिए. उसने बिजेंदर के फूले हुए सीने को देखा. उसके मन में आया कि उसे भी बिजेंदर की बगल

छाया : विद्यावत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जाकर खड़ा होना चाहिए, लेकिन वह ऐसा नहीं कर पायी. बिलोचन महतो दो कदम आगे बढ़े, "कहता हूं, तुम लोग भाग जाओ. . ."

बिजेंदर भी दो कदम आगे आ गया, "अंतिम बार कह रहा हूं, भले आदमी की तरह गाय वापस कर दीजिए, वर्ना हम लोग खोल लेंगे." पीछे से कई लोग चीखे, "चलो, हम लोग खोल लें."

बतकही समाप्त हो गयी. भीड़ में थोड़ी सी हलचल हुई. बिलोचन महतो ने फायर कर दिया. निशाना बिजेंदर ही था. महतो का हाथ उत्तेजना में कांप गया और गोली बिजेंदर की दायीं ओर खड़े व्यक्ति को लगी. वह चीखकर गिर पड़ा. भीड़ में बिजली सी कौंध गयी. बिजेंदर की बगल से महेसर ने भाला खींचकर महतो पर फेंका. भाला महतो की बायीं आंख में लगा. बंदूक हाथ से छूट गयी. महतो तड़फ उठे. बंदूक का छूटना था कि कई भाले और गड़ासे एक साथ महतो पर बरस पड़े. यह सब पलकों में हो गया. देखते-देखते महतो का शरीर मांस का लोथड़ा बन गया.

इसके साथ ही एक घटना और घटी. गीता बहुत जोरों से चीख पड़ी और बेहोश हो गयी. तमाशबीनों ने उसे हाथों हाथ उठाया और घर पहुंचा दिया. मां ने सिर पीट लिया, "हाय री अभागी! काहे खातिर गयी थी. लड़ाई-झगड़ा भी कहीं भले आदमियों के देखने की चीज है?"

कहते हैं, धमनी में बहते लहू में एक किस्म का अनजाना स्नेह होता है और धमनी के बाहर बहते लहू में आतंक. जिस महतो की गोली ने लोगों को पागल बना दिया था, उसके बहते लहू ने लोगों को सिर पर पैर रखकर भागने के लिए विवश कर दिया. जिसका जिधर सिर समाया, उधर भाग गया. गांव सूना हो गया. आधा मील पर थाना था. पुलिस को गांव पहुंचने में देर नहीं लगी.

गांव में जो लोग थे, वे काफी डरे हुए थे. पुलिस वालों ने पूछ-जांच शुरू की. गांव में हर लड़ाई-झगड़े के समय बिना बुलाये ही काफी लोग जमा हो जाते हैं. कुछ पेशेवर गवाह आगे बढ़कर गवाही भी देते हैं और अपने सात पुश्त का वैर वसूलते हैं, लेकिन जहां दो-दो खून हो गये हों, वहां किसकी हिम्मत कि गवाह बने. दारोगाजी जिससे भी पूछते, वह हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता, "हजूर, मैं नहीं था." वहां दो-चार लोगों ने थोड़ा कुछ कहा भी तो महतो के पक्ष में. दारोगा था काइयां, बातों से बातें निकालने वाला. उसे सूचना मिली कि कुछ दूर खड़ी एक लड़की चीखकर गिर पड़ी थी. सो, दारोगा उसके दरवाजे पर जा धमका.

□

गांव में खलबली मच गयी. खून के केस में गांव की लड़की गवाही देगी. कोर्ट-कचहरी जायेगी. बाप रे, वकील तो जिरह के समय फजीहत कर देगा. कैसे-कैसे प्रश्न पूछता है वकील.

गांव में जिसकी मूछें लंबी होती हैं, वह पूरे गांव की इज्जत का ठेकेदार हुआ करता है. ऐसे समय में अनायास आकर इज्जत बचाया करता है. ऐसे ही कुछ लोग आ गये. मसोमात की जवान बेटी कचहरी जायेगी. इससे तो खानदान की इज्जत चली जायेगी. नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है. मसोमात गांव में अकेली थोड़े हैं. दारोगा जी की खातिर तवज्जो शुरू हुई. मसोमात ने गले की हंसुली गिरवी रखी और सौ रुपयों का इंतजाम किया और अपनी जवान बे[टी] को खून वाले मुकद्दमे की गवाह बनने से बचाया.

मां को दारोगा अथवा गीता पर गुस्सा नहीं आया. गांव में मार पीट होती ही है, लोग तमाशा देखते ही हैं और दारोगाजी का काम ही है मुकद्दमे की तहकीकात करना. दुख तो यह है कि गांव ही किसी ने दारोगा से गीता का नाम कहा. हे राम, यह गांव अ[ब] गांव रह गया कि चांडालों की बस्ती हो गया. इज्जत के लिए की हंसुली, तो क्या, लोग मौरूसी जमीन तक बेच डालते हैं. गीता दो दिन तक जैसे नशे की हालत में रही. उसने जिंदगी कभी लोगों को गाजर-मूली की तरह कटते नहीं देखा था. उ[सके] दिमाग पर घायल और तड़पते इंसानों की भयावनी छाप [पड़] गयी थी. लहू से लथपथ चेहरे उसकी आंखों में बार-बार नाच उठ[ते]. कई बार उन चेहरों में बिजेंदर का चेहरा भी नाच उठता. उ[सके] शरीर में सुरसुरी-सी दौड़ जाती. वह एकांत में बैठ रहती, [जैसे] शरीर को सारी शक्ति किसी ने बिल्कुल निचोड़ ली हो. [वह] बीमार-सी हो गयी.

▣

तीसरे सवेरे, जब गीता बिस्तर में ही थी, उसकी मां अपने [हर]वाहे मुसहरु से आंगन में जोर-जोर से बातें कर रही थी. बिजेंदर [का] नाम सुनकर गीता चौंककर उठ बैठी और कान पास कर सुन[ने] लगी. गीता ने जितनी बातें सुनी, उसका मतलब था कि मह[तो] के भाई-भतीजों ने मिलकर बिजेंदर को औव्वल असामी बनाया [है]. पुलिस ने बिजेंदर को पकड़ लिया है. वह हवालात में है. वह ह[ड़]बड़ाकर आंगन में आ गयी और मां से पूछा, "औव्वल असामी क्या होता है . . . . ?"

"औव्वल असामी का मतलब . . . मतलब . . ."

शायद मां भी इससे ज्यादा नहीं जानती थी. मुसहरु [ने] मां को संभाला, "औव्वल असामी माने एक लंबर मुद्दाले . . ."

गीता दोनों का मुंह देखने लगी. फिर पूछा, "बिजेंदर को क्या हुआ?"

"पुलिस पकड़कर ले गयी."

"कहां?"

"जेहल'!'

"जेहल."

"हां, बिजेंदर ही औव्वल असामी है. महतो के भाई और [उनके] नौकरों ने कहा है कि उसने ही भाला भोंककर महतो को मारा."

गीता जैसे कालातीत, स्थानातीत हो गयी. फिर वह जोरों [से] चीख पड़ी, "यह झूठ है. एकदम झूठ . . मैंने आंखों से देखा है."

मुसहरु बाल्टी लेकर आंगन से बाहर चला गया. मां एकटक गीता को देखती रही और गीता धीरे-धीरे चलकर ओसारे पर जा बैठी और अपलक आंखों से पूरब के आसमान को देखने लगी, ज[हां] कुछ भी नहीं था, स्याह नीलापन, अथाह गहरायी, विराट खोखलापन.

"मां . . . ." गीता ने आहिस्ता से कहा. मां अगर संपूर्ण चेतना से गीता के प्रति सजग नहीं रहती तो शायद सुन भी नहीं पाती. मां ने सुना, लेकिन कोई उत्तर नहीं दिया.

"मां, मैंने अपनी आंखों से देखा है, बिजेंदर ने नहीं, महेसर ने भाला मारा था. हमें साफ बात कहनी चाहिए."

मां ने तब भी कोई उत्तर नहीं दिया. वह एकटक अपनी बेटी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

निबटान

▣ बलराम

कलुवा की बीवी दिनभर लापता रही. शाम घिरे घर आयी तो बताया, "चौधरी ने अपने फार्म की कोठरी में बंद कर लिया था और. . . ." कलुवा का खून खौल उठा, "मैं रिपोर्ट करूंगा, डाक्टरी करवाऊंगा, एक एक को भूसा कर दूंगा." शाम को ही बीवी को लेकर वह कस्बे चल दिया. गांव के बाहर निकला ही था कि चार-पांच लठैतों ने आ घेरा और. . .वह बेहोश होकर गिर पड़ा.

होश आया तो चारपाई पर था. ठाकुर उसे अस्पताल ले आये थे, लेकिन यह वह अस्पताल नहीं था, जहां उसे तथा उसकी बीवी को पहुंचना चाहिए था. ठाकुर उसे उसके गांव से काफी दूर इंटीरियर के एक अस्पताल में ले आये थे, जहां से सरकारी अस्पताल और थाना बहुत दूर थे. तीसरे दिन वह काफी ठीक था और ठाकुर उसे गांव ले आये. गांव में सनसनी फैल गयी थी और चौधरी के साथ तीन-चार लोग नदारद थे.

ठाकुर ने उसे समझाया कि होने वाला कुछ नहीं है. तुम चाहो तो सौ-पचास रुपये दिलवा दूं. तुम पुलिस-थाने मत जाओ, लेकिन उसने ठाकुर की बात नहीं मानी और अगले दिन थाने जाकर रिपोर्ट करने की घोषणा कर दी.

दूसरे दिन सुबह दस बजे वह थाने जाने ही वाला था कि पुलिस आ गयी. चौधरी ने अपने घर चोरी हो जाने की नामजद रिपोर्ट करवायी थी और पुलिस कलुवा के घर तलाशी लेने आ धमकी थी. कलुवा के घर से एक लोटा, एक थाली और एक गिलास बरामद हुआ, जिन पर चौधरी तथा चौधरी के बाप का नाम खुदा हुआ था. कलुवा चमार चोरी के इल्जाम में पकड़ लिया गया. उसने कुछ कहना चाहा तो पुलिस के डंडों ने उसे खामोश कर दिया. उसे याद आया—ये लोटे, थाली और गिलास तो चौधरी के घर हुए कामकाजों में ली गयी बेगार के इनाम के रूप में मिले थे. वह समझ गया कि अस्पताल ले जाने की हमदर्दी ठाकुर ने क्यों दिखायी थी. बीवी ने बताया था कि चौधरी के साथ ठाकुर और. . ." कलुवा कैदी बनकर गांव से जा रहा था और पीछे चौधरी तथा ठाकुर हंस रहे थे कि चलो, तीन सौ रुपये में ही मामला निबट गया. ☐

रही—जहां उदासी, बेबसी और करुणा भरी हुई थी.

"मैं गवाही दूंगी मां."

"क्यों, किसके लिए?"

गीता चुप हो गयी. वह बोलना चाहती थी, बहुत जोर से कुछ ना चाहती थी, किंतु गांव के पूरब जो बांस का बगीचा है जिसमें दिन-रात अंधेरा छाया रहता है, वह सारा अंधेरा की आंखों में आ धंसा और गांव के प्रत्येक दरवाजे पर बंधी की सारी डोरियां इकट्ठी होकर उसके होंठों को सी गयीं.

आंगन से बाहर चली गयी. घंटे-भर बाद आयी. गीता के निकट उन्होंने सूखे हुए स्वरों में कहा, "बेटी, मामा के गांव चलने तैयारी करो."

फिर गली की बाढ़ का कोई गंदला, बदबूदार पानी घर-आंगन गया, जिसके थपेड़ों पर दो मुर्दा औरतें चक्कर काटती रहीं एक टप्परदार बैलगाड़ी ने आकर दबोच लिया और गांव से की ओर चल पड़ी. गांव से बाहर निकलने पर दोनों मुर्दों दूसरे से गले मिलकर विदा लिया. एक पुनः गांव लौट आयी दूसरी औरत बैलगाड़ी की करुण चर्र-चों और दर्द-भरे कोलों के बीच दुख-स्वप्नों की भांति अनेक दृश्यों पर नजर अपने मामा के घर पहुंचा दी गयी.

महतो का मुकद्दमा बड़े जोर-शोर से चला. विजेंदर सहित बत्तीस भी असामी बनाये गये. बड़ी संख्या में असामी होना उनके में अच्छा हुआ. समूह की भावना बनी रही और मुकद्दमे के के लिए चंदा जमा करने में सुविधा हुई. बाद में कुछ राज-क दलों ने भी उन्हें साथ देना शुरू किया.

लगभग बारह महीनों की दौड़-धूप, परेशानी और कच्च-किच्च बाद जिला कचहरी में मुकद्दमे का फैसला हुआ और इन बारह महीनों के दरम्यान गीता सिर्फ दो बातों पर विचार करती रही कि विजेंदर का मुकद्दमे में फंसना सिर्फ उसी के कारण हुआ. मार-पीट होने के कुछ घंटों पहले ही तो उसने गीता से कहा था कि वह गांव छोड़कर उसके साथ भाग चले. मगर उसने विजेंदर को ताना मारा था—मर्द होने का. वह तो ठीक में मर्द है—गीता को साथ लेकर गांव-घर छोड़ने को तैयार था, मगर गीता ने क्या किया, परिवार और समाज के डर से पुलिसवालों के सामने तक नहीं जा सकी, सच कहने के लिए. वह डरपोक है, स्वार्थी है, झूठी है. मां ने उसे मामा के घर भेजकर छुट्टी पा ली है. कोई खोज-खबर नहीं. मामा सभा-गाछी जाकर उसके लिए वर की तलाश कर रहे हैं. उसकी शादी ननिहाल से ही कर दी जायेगी क्या? सवालों का अंत नहीं, जितना सोचती है, सवालों की संख्या में उतनी ही वृद्धि होती जाती है.

तभी एक दिन सुबह मुसहरु आता है, नये धान का चिउरा लेकर. एक डली चिउरा, एक बर्तन दही, एक घोर केला. मामा के बच्चे बड़े खुश हुए. दोपहर में, जब मुसहरु खाना खाकर आराम करने बैठा और इत्मीनान से खैनी मलना शुरू किया तो धीरे-धीरे गीता वहां पहुंची. मां की खबर. . .चंपा बहन की खबर. . . मीता की खबर. . .और जिस असली खबर के लिए वह आयी थी, उसके बारे में पूछा, "मुसहरु चा, महतो वाले मुकद्दमे का क्या हुआ?"

"होना क्या था, खून का बदला फांसी. तीन आदमी को सात-सात साल जेहल और औव्वल असामी को. . . मालूम है न औव्वल असामी विजेंदर था. . . उसे फांसी. अब उन लोगों ने पटना हाईकोर्ट में अपील की है. कुछ नुक्ता मिल गया तो बचेगा, नहीं तो खून के बदले फांसी . . ."

मुसहरु ने खैनी मलकर होठों में रक्खा और अज्ञान-भरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया पर पिच्च-थू किया. गीता ने ऊपर की ओर देखा और गहरी सांस छोड़ी. ऊपर नीम के पत्ते हिल रहे थे. गीता को लगा कि पूरे नीम के पत्तों का तीतापन उसकी जिह्वा पर आ गया है.

कान में उच्चाटन-मंत्र डालकर, दूसरे दिन, मुसहरु गांव लौट गया. गीता की रातों की नींद उजड़ गयी. विजेंदर को सजा दिलाने वाली वही तो है . . . सच बात भी नहीं बोल पा रही है . . . मुंह-अंधेरे उठकर आंगन में आयी. पल भर सोचने के बाद आंगन से बाहर निकली. मामा के दरवाजे के आगे लगभग दो सौ गज का खाली मैदान था, उसके बाद फूस का बना एक छोटा घर था, जो गांव की प्राथमिक पाठशाला थी. दिनभर गांव के बच्चे यहां पढ़ते और रात में स्कूल के एकमात्र शिक्षित छब्बू गुरुजी उसी मकान में मेजों को जोड़कर बिस्तर लगाते. गीता स्कूल के निकट पहुंची, देखा गुरुजी, बरामदे के आगे टहलते हुए दातून कर रहे हैं. वह निकट गयी. गुरुजी के कुछ पूछने के पहले ही वह बोल उठी, "गुरुजी, इस गांव में सिर्फ आप ही ऐसे आदमी हैं, जो दूसरों के दुख-दर्द को समझते हैं. आपसे एक मदद लेने आयी हूं."

"मुझसे जो बन पड़ेगा, जरूर करूंगा." गुरुजी ने कहा. गीता ने पूरी कहानी सुनायी, सिर्फ अपने संबंध की गोपनीयता को बचाती हुई. अंत में उसने कहा कि वह इस मुकद्दमें में गवाह बनकर सच बात कहना चाहती है, लेकिन कैसे गवाही दे, समझ में नहीं आता. मां या मामा ऐसा करने नहीं देंगे. गांव-घर के लोग भी खिलाफ हो जायेंगे. गुरुजी को मामले-मुकद्दमें का कोई अनुभव नहीं था. उन्होंने कोई राय नहीं दी. गीता की तरह वह भी माथे पर हाथ रख सोचने लगे. अंत में गीता ने ही कहा, "क्यों न थानेदार को एक चिट्ठी लिखी जाये, जिसमें कहा जाये कि मैंने महतो का खून होते देखा है और मैं सही आदमी का नाम बतला सकती हूं. मेरी गवाही ली जाये. गुरुजी ने हां-में-हां मिलायी, क्योंकि इससे ज्यादा वह भी नहीं सोच सके. आखिर गीता ने पैसे दिये और गुरुजी ने लिफाफा लाकर उसके अनुसार मजमून बनाया. गीता ने अंगूठे का निशान लगाया. चिट्ठी थानेदार को भेज दी गयी.

▣

उस रात गीता बिना दुख-स्वप्नों की नींद सोयी. मन के किसी कोने से बार-बार आवाज आती रही कि अब वह विजेंदर को बचा लेगी. मन कुछ हल्का हुआ. अब वह प्रत्येक सुबह नयी आशाओं से जगने लगी. रोज सोचती, शायद आज कचहरी से बुलाहट आ जाये. वह कचहरी जाकर सच को उजागर करेगी और विजेंदर बच जायेगा. कभी-कभी वह घंटों कचहरी की कल्पना किया करती. कैसी होती है कचहरी. कैसे होते हैं जज? उसे कठघरे में खड़ा होना पड़ेगा. पांव कांपने लगेगा तो वह जोर लगाकर काठ को पकड़ लेगी. कचहरी में तिल धरने की जगह नहीं होगी. सामने ही विजेंदर होगा, आंखें फाड़-फाड़कर उसे देखता हुआ. इन्हीं कल्पनाओं के बीच एक दिन मुसहरु और गांव के रिश्ते का चचेरा भाई आ गये, विदाकर गांव ले जाने के वास्ते. वह मन ही मन खुश हुई. वह गांव जाकर गवाही देने का इंतजाम करेगी, चाहे मां या और लोग कुछ भी कहें.

दूसरे दिन, काफी सवेरे, बैलगाड़ी की टप्पर चादर डाली गयी और वह गांव की ओर चल पड़ी. रास्ते-भर खयालों में डूबी रही. दो-तीन बार मुसहरु ने खाने-पीने के लिए पूछा, लेकिन उसने टाल दिया. वह जल्द से जल्द गांव पहुंचना चाहती थी.

शाम को गांव पहुंची. मां और दो-तीन महिलाएं उसे बैलगाड़ी से उतारकर आंगन में लायीं. पांव धुलाया. यह सब देखकर ही वह समझ गयी कि मामला नाजुक है. जल्द ही उसे पता चल गया कि मामा ने सभा-गाछी से चुपचाप लड़का तय कर विवाह का दिन निश्चित कर दिया था—याने ठीक तीसरे दिन. यह सब बिल्कुल खुफिया ढंग से किया गया, ताकि रंग में कोई भंग न हो.

रात में भोजन के बाद पास-पड़ोस की औरतें उसके आंगन में जमा होने लगीं. बरामदे पर मां ने चटाई बिछा दी, जहां औरतें आकर बैठती गयीं और काफी औरतों के जमा होने के बाद विवाह का गाना शुरू हुआ. ऐसे मौके पर जिस लड़की का व्याह होता है, वह गीत गानेवालियों के बीच नहीं बैठती, बल्कि वह अपनी हमजोलियों से दिन-रात घिरी रहती है और चुहल-बाजियों का शिकार बनी रहती है. वह अपनी सहेलियों से बहुत ज्यादा थकी होने और सिर-दर्द का बहाना कर घर के भीतर चली गयी. उसका सिर चक्कर काटने लगा. समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे. मां ने अचानक बुलाकर शादी तय कर दी. विजेंदर जेल में है. अगर वह व्याह अस्वीकारे भी तो किसके बल पर और कौन-सा बहाना बनाकर. घर में रहकर व्याह से बचना असंभव है. उसका विजेंदर जेल के अंदर चक्की पीस रहा होगा, आधा पेट खिचड़ी खा रहा होगा और वह व्याह रचाकर ससुराल जायेगी . . . . .नहीं. . . .यह असंभव है. . . . .

उसका मन हुआ कि वह खूब जोर से चीख पड़े और गीत गाने-वाली औरतों को धक्के मारकर आंगन से बाहर निकाल दे, किंतु उसे चीखने के लिए शब्द नहीं मिले और उसमें उठने की शक्ति नहीं रही. गहरे अंधेरे में उसकी आंखों से बेबसी के आंसू बह चले. उस निर्वाक् रात में उसके व्याह के गीत देवताओं के नाम पर, पितरों के नाम पर दूर-दूर तक मंगल और आनंद की भावना बिखेरते रहे और उसके मन पर कालिमा की परत-दर-परत घिरती रही. उसने तकिया से कान ढंक लिये.

अलसायी रात में गांव की औरतें गीत गाकर अपने-अपने घर चली गयीं. मां उसके कमरे में कोने वाली खाट पर आकर सो रही. थोड़ी देर में मां के खर्राटे गूंजने लगे.

▣

गीता काफी देर तक करवटें बदलती रही. धीरे-धीरे उसने महसूस किया कि लेटे रहना उसके लिए असंभव है. वह बरामदे में आ गयी. फागुन की हवा में सर्दी की खुनकी थी. वह बरामदे में बैठ गयी. सूने आंगन के एक ओर आंवले का पेड़ था. चारों ओर निस्तब्धता थी. कुछ देर बाद, गांव के किसी दूर कोने में एक कुत्ता रो उठा. गीता का मन कुहर-सा उठा. खाली आकाश की तरह ही उसका मन भी खाली था. सितारों की तरह ही अनगिनत घाव उसके मन पर हैं. सूनी रात में कुत्ते का रोना निर्गुणिया उदासी भर देता है. गीता के मन में उच्चाटन का सर्द तूफान दौड़ गया. आखिर इस जिंदगी का क्या होगा? वह अपने मन के मीत को पा नहीं सकी, पा सकना तो दूर, वह उसे बचाने के लिए सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बोल पा रही है. वह कुछ हल्ला-गुल्ला मचायेगी तो फिर रिश्तेदार के घर भेज दी जायगी. उच्चकुल में पैदा होने यही मर्यादा है. यही उसकी सीमा है. वह लक्ष्मण-लकीर के र कैद है.

लेकिन मन ने नहीं माना. जिस कुल और संस्कार में मन का ण हो, उसकी प्रत्येक भंगिमा को बुद्धि स्वीकार करे, यह संभव . उसकी अपनी ही विवशता ने उसकी रीढ़ की हड्डियों में ह की निरंतर उठनेवाली लहरों का सृजन कर दिया. उसके ग पर बार-बार धक्का लगने लगा, नहीं. . .नहीं. . .यह संभव है. आंखें बंद कर सब कुछ बर्दाश्त कर लेना संभव नहीं.

वह धीरे-धीरे बरामदे से उठकर आंगन में आ गयी. एक बार कर घर की ओर देखा, जहां मां सोयी थी. वह झटके के साथ र निकलने का दरवाजा खोलकर अंधकार में विलीन हो गयी. नहीं, कैसे क्या हुआ. वह किसी जादुई सम्मोहन में दौड़ती थाने के बरामदे तक पहुंच गयी. वहां पहरे पर खड़े सिपाही ने डांटा तो होश हुआ. वह रुककर हांफने लगी. उसने कई सवाल , लेकिन हर सवाल का उत्तर वह इतना ही देती रही कि उसे रोगाजी से मिलवाया जाये, वह एक भेद की बात बताना चाहती उसने अपना परिचय तक देना कबूल नहीं किया.

दारोगाजी अपने क्वार्टर में सोये थे. पहरे वाले सिपाही ने खबर भिजवायी. वे अलसायी आंखों से उठकर आये. लैंप रोशनी में गीता को देखा तो आंखों की नींद उड़ गयी. देखते रह गये. दारोगा को भी गीता ने इतना ही कहा, "एकांत में एक जरूरी सूचना देना चाहती है."

"बिल्कुल एकांत में." दारोगा ने पूछा.

"हां." उसने कहा.

"तुम्हारा नाम."

"आपको नाम-वाम से क्या लेना है. आप जल्दी करिए."

"अच्छा. . .जल्दी करता हूं."

दारोगाजी ने पहरे वाले सिपाही को आंख मारी और गीता लेते हुए भीतर वाले कमरे की ओर बढ़े, "चलो, तुम्हारा न ले लूं."

गीता को जिस कमरे में ले जाया गया, वहां रोशनी नहीं थी. वहशी दरिंदा था और एक मासूस गीता थी.

"विजेंदर ने खून नहीं किया. तुम कहती हो तो मैं मान लेता हूं, र खून तो हुआ. . .तो फिर किसने किया खून. . .छोड़ो इस बात किसी ने किया हो खून. . .पहले तो यह बताओ, विजेंदर से तेरा क्या रिश्ता है?"

". . . . ."

"समझ गया, विजेंदर तेरा यार है."

". . . . ."

गीता की चुप्पी ने दारोगाजी के चेहरे पर मुस्कान बिखेर फिर तो शांति और सुरक्षा के रूप में प्रतिष्ठापित 'थाना' के अंधेरे कमरे में एक सशक्त अधिकारी-पुरूष की गर्म उसांसें डरी हुई दयनीय लड़की की सिसकियां भर गयीं.

लगभग घंटे भर बाद दारोगाजी अपने क्वार्टर की ओर चले और जाते समय 'पहरा' को कहते गये—लड़की को ले जाकर हिफाजत के साथ हाजत में रक्खे, कल सबेरे बयान लिया जायेगा.

ग़ज़ल

आदमी एक जीवित हवन है यहां,
सत्य मुर्दा पड़ा बेकफन है यहां.

फूल की गंध तक को तरसते हैं हम,
आपके नाम सारा चमन है यहां.

चांद, सूरज, सितारे सभी कैद हैं,
चंद महलों में गिरवी गगन है यहां.

यों तो लगती शरीफों की बस्ती है ये,
एक ईमान ही बदलचन है यहां.

मन धनुष से यहां टूटते हर घड़ी,
जिंदगी एक लंका-दहन है यहां.

दोस्तो! दूर हमको कहीं ले चलो,
हर तरफ बस जलन ही जलन है यहां.

▣ हनुमंत नायडू

सिपाही ने मुस्कराते हुए कमरे में पैर रक्खा तो गीता लश्त बनी फर्श पर फैली हुई थी और करुण स्वर में पानी मांग रही थी. सिपाही पानी लाने चला गया. पानी लेकर जब आया तो कमरा खाली था. सिपाही ने इधर-उधर देखा . लड़की कहीं नहीं थी. सिपाही मुस्कराने लगा, "स्साली, चालू थी."

दूसरे दिन घर में गीता की खोज सूरज उगने के पहले से ही होने लगी. पहले तो मां ने खुफिया तौर पर खोज की, लेकिन जब कहीं पता नहीं चला तो बात लोगों में फैल गयी. तरह तरह की चर्चा की जाने लगी, लेकिन यह चर्चा ज्यादा देर तक नहीं की जा सकी. लगभग दस बजे गीता का पता लग गया. बनवारी लाल ने सूचना दी कि गांव के दक्षिण वाले पीपल की डाल से गीता गले में फंदा डाले झूल रही है. गांव में कुहराम मच गया. पूरा गाव पीपल के इर्द-गिर्द जमा हो गया. थाना खबर दी गयी. दारोगाजी आये. लाश को देखते ही दारोगाजी स्तंभित रह गये. गांव वालों से मालूम हुआ, फिर तो उनकी आंखों में चमक आ गयी. उन्होंने गांव वालों को बतलाया, "इस लड़की को महतो के असली खूनी का पता था और इसने थाने पर चिठ्ठी भेजी थी कि इसका बयान लिया जाये, लेकिन हमारे पहुंचने के पहले ही इस बेचारी को 'नक्सलियों' ने फांसी पर लटका दिया. अब हमें पता करना होगा कि इस गांव में कौन ऐसा नक्सलिया है, जिसने. . ."

महतो-हत्या की चश्मदीद गवाह एक सुकुमारी सत्य को अपने भीतर समेटे सदा-सर्वदा के लिए खामोश लेटी थी, जिसकी मृत्यु का गवाह पीपल का दरख्त था, जो छुरी की नोंक जैसे सत्य को अपने भीतर आत्मसात कर हिलते हुए पत्तों की भाषा में जो बयान दे रहा था, उसे समझने वाला कोई नहीं था. दारोगा के सामने पूरा गांव पीपल के पत्ते की तरह ही कांप रहा था. . . □

● 38/276, राजेंद्र नगर, पटना-800016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कुर्सी महाठगिनि हम जाणी

•विनोद शंकर शुक्ल

व्यंग्यकारों की निगाह से न विष्णु बचते हैं न लक्ष्मी. खासतौर से तब जब 'कुर्सी' का चक्कर हो, क्योंकि "कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है!"... विष्णु और लक्ष्मी को नये अर्थों में रूपायित करती विनोद शंकर शुक्ल की एक नयी व्यंग्य कथा. इसके पूर्व 'एक और मेघदूत' व्यंग्य कथा आप अगस्त: 80; अंक : 2 में पढ़ चुके हैं.

कबीर साहब साधुओं से घिरे बैठे हैं. संगति चल रही है. साधू चिलम का दम लगा रहे हैं. चिलम और धर्म का गहरा संबंध है. चिलम का धुआं अंदर जाता है और गोता लगाकर साधुओं के धर्म को बाहर निकाल लाता है. लोग समझते हैं, साधू नशा कर रहे हैं. साधू नशा नहीं कर रहे, वे मन के कुएं में चिलम की रस्सी-बाल्टी डालकर धर्म का जल निकाल रहे हैं. कबीर साहब चूंकि अपने युग के 'एन्सायक्लोपीडिया' थे, इसलिए साधू अपनी हर जिज्ञासा का समाधान उन्हीं से

● जयतग सिंह

कराते थे. साधू जैसे ही चिलम का दम मारते, कोई न कोई जिज्ञासा निकलकर बाहर आ जाती. इसी प्रक्रिया से एक साधू ने जिज्ञासा बाहर निकाली और कबीर साहब से पूछा—"सद गुरु! मैंने एक चित्र देखा है. क्षीर-सागर में देवताओं के हाई-कमान भगवान विष्णु शेष-शय्या पर शयन कर रहे हैं. लक्ष्मी चरण दबा रही हैं. विष्णु की नाभि से निकले कमल में ब्रह्मा विराजमान हैं. समीप दोनों हाथ जोड़े देवर्षि नारद खड़े हैं. जिनके मुख से विष्णु की स्तुति बिना टोटी के नल के जल की तरह बह रही है. इस चित्र का अर्थ क्या है?

कबीर मुस्कराये. हर ज्ञानी, अज्ञानी की नादानी पर मुस्कराता है. फिर प्रश्नकर्ता की ओर करुणा से देखा. हर ज्ञानी का मन अज्ञानी के प्रति करुणा से भर उठता है. फिर किंचित समाधिस्थ हुए. हर ज्ञानी प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए समाधि में उतरता है. इन सब क्रियाओं को पूर्ण करने के बाद कबीर साहब की वाणी प्रकट हुई, बोले, "साधो, बड़ा उत्तम प्रश्न है. तुम जिस चित्र की बात कर रहे हो, वह सत्ता की राजनीति का सनातन चित्र है. सत्तासीन अनादि काल में क्षीर-सागर में सुख-शय्या पर लेटते चले आ रहे हैं. सत्ता पर आने के बाद वे अपने लिए दूध का समुद्र चुन लेते हैं और उस पर आसन बिछाकर लेट जाते हैं. दूध पर वे अपना अधिकार समझते हैं और छाछ पर जनता का. शेष-शय्या वे जान-बूझकर चुनते हैं, ताकि जनता यह मुहावरा गढ़ सके कि सत्ता फूलों की सेज नहीं है, सांपों की सेज है. ये सत्ता को पंथ कराल महा, शेषनाग की सेज पे सोवनो है. भोली जनता नहीं जानती कि सत्ता और सर्प में समझौता हो गया है. सर्प कहते हैं, तुमने हमारे समर्थन से सिंहासन पाया है. हम समर्थन बेचते हैं. हमारे समर्थन की कीमत अदा करो. सत्ता भी एक सहकारी उद्योग है. हमें लाभांश का सत्तर प्रतिशत चाहिए. सत्ता कहती है, चालिस प्रतिशत से ज्यादा देना संभव नहीं है. सर्प सत्ता की शतरंज के बादशाह को शह देते हुए कहते हैं, तब ठीक, हमारा समर्थन वापस, तुम्हारी सत्ता खलास! सत्ता बादशाह को बचाने के लिए 'फिफ्टी-फिफ्टी' पर समझौता कर लेती है. इस प्रकार सत्ता के सिंहासन को सर्पों का टेका मिल जाता है. साधो, आज की सारी व्यवस्थाएं सर्पों पर टिकी हैं. राजनीति, अर्थनीति, साहित्य, कला, संस्कृति सभी को स्वार्थ के शेष-नागों ने अपने सिर पर थाम रखा है. भोली जनता जब सत्ता को सर्प के सिंहासन पर विराजित देखती है तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर जाता है. सत्ता कितनी महान है. जनकल्याण के लिए कांटों का ताज धारण करती है. सत्ता तेरी जय हो, सत्ता तू जिंदाबाद! साधो, चित्र के प्रत्येक प्रतीक को तुम ठीक से समझ लो. विष्णु अर्थात् सत्तासीन, क्षीर-सागर यानि सत्ता से प्राप्त असीम सुख और शेष-नाग याने निहित स्वार्थी तत्व, जिनसे समझौता किये बिना सत्ता की स्थिरता

नहीं. संतो, तुम समझ गये होगे कि ता का सुख और सुख का समझौते से ना गहरा रिश्ता है.

साधो, लक्ष्मी द्वारा विष्णु के चरण ने की क्रिया भी बहुत अर्थपूर्ण है. सत्ता बंक होता है. वह लक्ष्मी को आकर्षित ती है. लक्ष्मी सत्ता के आकर्षण से उसी र खिची चली आती है, जैसे नाद के कर्षण से मृग. लक्ष्मी कहती है, 'प्रभो, मेरे ठाकुर, मैं तोरी दासी.' सत्ता उत्तर ती है, 'तुम बिन कल न परत दिन-राति.' नों में पलक झपकते प्रेम हो जाता है. नों परिणय-सूत्र में बंध जाते हैं. साधो, ता और लक्ष्मी का गठबंधन अनादि है. क्ष्मी स्थिर होकर सत्ता के पैरों के निकट जाती है. वह चरण दबा-दबाकर सत्ता लाइसेंस, परमिट, ठेके, पदवियां आदि गती रहती हैं. सत्ता लक्ष्मी की चरण-वा से प्रसन्न हो जाती है. वह जाग्रत वस्था में हो अथवा सुप्त, लक्ष्मी की हर पर 'तथास्तु' की मोहर लगा देती है. र लक्ष्मी की समर्पणशीलता से सत्ता भंडार सदा भरा-पूरा रहता है. साधो, ता बिना लक्ष्मी शून्य है और लक्ष्मी सत्ता ना अनाथ है.

संतो, विष्णु की नाभि से निकले कमल ब्रह्मा विराजमान हैं. ब्रह्मा स्रष्टा हैं, र्माण के प्रतीक. हर निर्माणकर्ता को खरीद लेना सत्ता का स्वभाव है. निर्माताओं स्वतंत्रता सत्ता के स्वार्थ में बाधक वह अपने स्वार्थ के अनुकूल निर्माण चाहती है. यही कारण है कि लोकतंत्र, तंत्र, साहित्य और संस्कृतितंत्र—सभी त्रों के नियामकों को सत्ता खरीद लेती ये नियामक भी पक्के व्यापारी होते हैं. क्रय-विक्रय के लिए बाजार में खड़े रहते ये खुद अपनी बोली लगाते हैं और नासेठों अथवा सत्ता के हाथों बिक जाते इनका काम दरबार सजाना हो जाता ये परोपजीवी पौधे बन जाते हैं. सत्ता नका पोषण करती है. इन्हें दुम हिलाता र सत्ता बहुत प्रसन्न होती है और इनकी वामीभक्ति को विभिन्न अलंकरणों से भूषित करती है.

साधो, नारद की स्तुति का आशय तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं है. तुम जानते कि सत्ता बड़ी स्तुतिप्रिय होती है. स्तुति सत्ता के लिए आक्सीजन है. अतः सत्ता तोतों की तरह चापलूस पाल लेती है. ये चापलूस सत्ता की धाराप्रवाह स्तुति करते हैं. सत्ता का अखंड-कीर्तन ही इनका एकमेव कार्य है. ये चापलूस ऊंचे दर्जे के कलाकार होते हैं. 'महान. . . .महान' की सतत रट द्वारा ये सत्ता के हृदय में महान होने का भ्रम पैदा कर देते हैं. आरोपित महानता से सत्ता को मदांध कर ये अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं. साधो, सत्ता यदि गुड़ है, तो चापलूस चींटे. सत्ता और चापलूसों का हर युग में साथ रहा है. युग के अनुरूप केवल नाम में ही परिवर्तन हुआ है. कभी ये चरणदास रहे तो कभी चारण और वर्तमान युग में इन्हें 'चमचे' के नाम से जाना जाता है.

साधो, तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान हो गया होगा. दरअसल, ये चित्र सत्ता की माया का बड़ा सार्थक प्रतीक है. यत्र-तत्र-सर्वत्र आज सत्ता की माया का ही प्रसार दिखाई पड़ता है. सत्ता की माया याने राजनीति. इस भूखे-नंगे देश में लोग राजनीति खा रहे हैं, राजनीति पहन रहे हैं, राजनीति को ही ओढ़ते-बिछाते हैं. राजनीति में ही इन्हें मोक्ष दिखाई देता है. साधो, तुम पूछोगे—राजनीति क्या है? राजनीति एक खेल है—सत्ता की कुर्सी-दौड़! कुर्सी बीच में रखी है और लोग उसके चारों ओर बदहवास दौड़ रहे हैं. कोई कुर्सी पर बैठ जाता है तो बाकी लोग बलपूर्वक उसे उठाकर बाहर फेंक देते हैं. यह क्रम सतत जारी रहता है. कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है. साधो, कुर्सी के संस्कार भी अब बदल गये हैं. वह कठपुतली की तरह सत्ताकर्मियों को नचाती है. लोग उसके चरणों में अपना धर्म, ईमान, नैतिकता, मानवता आदि खुशी-खुशी गिरवी रख देते हैं. साधो, मैंने पहले ही कहा है—माया महाठगिनी हम जानी! अब यही माया कुर्सी बनकर जान-सुजान सबको ठग रही है. आओ, हम सब मिलकर इस तरह गायें—कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . !

. . . .और वे सब खंजड़ी-खड़ताल बजा-बजाकर गाने और नाचने लगे—कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . . .कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . . .! □

● विनोद शंकर शुक्ल

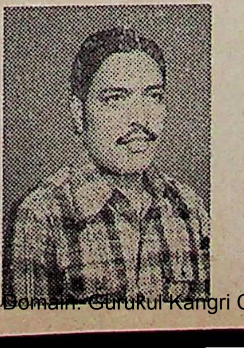

● सी. जे. रात्रि महाविद्यालय, रायपुर.

आसपास बिखरी कहानियां

संतुष्टि

▣ संतोष वर्मा

टिकट खिड़की से टिकट और बाकी पैसे उठाकर वह तेजी से प्लेटफॉर्म की ओर भागी. चर्च-गेट लोकल प्लेटफॉर्म पर आ चुकी थी. भीड़ में चढ़ते हुए उसने हथेली में दबी अठन्नी पर उचटती निगाह डाली तो बुदबुदा उठी, "खोटी दे दी, बेईमानी की भी हद है."

कोने की सीट उसे मिल गयी. तभी हाथ में चार-पांच अमरूद लिये लड़की की आवाज गूंजी, "पेरू ऽ ऽ रूपिये में चार."

उसने झट चारों अमरूद ले लिये और खोटी अठन्नी मिलाकर दो अठन्नियां उसे थमा दीं. लड़की ने बिना देखे पैसे जेब में डाल लिये.

"इसे काटकर मसाला लगा दे." एक बड़ा-सा हरा अमरूद उसने लड़की की ओर बढ़ाया. लड़की अमरूद काटने चार-पांच सीटों के बाद रखी अपनी डलिया की ओर बढ़ गयी. लौटी तो उसे लड़की के हाथ की फांकें कुछ छोटी लगीं, जो दिया था वही काट न! बेईमानी करती है."

और लड़की से मनपसंद अमरूद कटवाकर वह खाने लगी. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

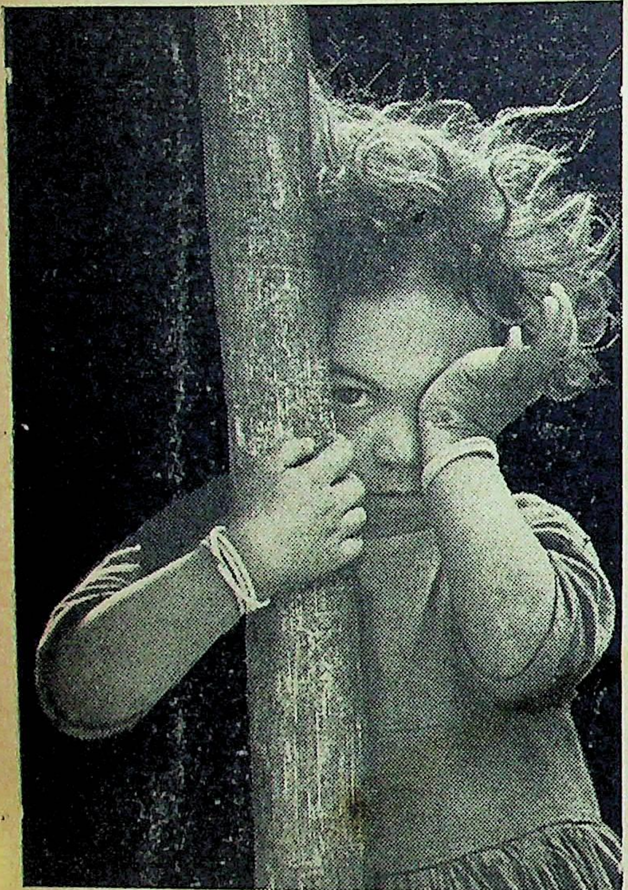

● टी. कासीनाथ

आटा

• हर भगवान चावला

"चलो बच्चू! भीतर चलें, मां बुला रही है." जीतो ने कहा.

"ठहर, एक खेल और करके दिखाऊं." इतना कहकर उसने सिर धरती पर टिकाया और कलाबाजी खा गया. जीतो हंस पड़ी.

भीतर बैठी मां को यह हंसी चुभ गयी. उसे गुस्सा आ गया, उसने फिर पुकारा, "जीतो, बच्चू, अंदर आओ!"

"बच्चू! मां बुला रही है." जीतो ने फिर कहा.

"बस, एक खेल और." यह कहकर उसने सिर नीचे और टांगें ऊपर उठाकर शीर्षासन लगा लिया.

"आहा. . .आहा!" जीतो ने तालियां बजायीं और हंस पड़ी

मां को फिर क्रोध आ गया. उसे यह हंसी असह्य हो उठी. "हंस क्यों रही है कंबख्त!" वह बड़बड़ायी. उसे स्वयं कभी हंसने का अवसर नहीं मिलता था और वह मन ही मन जैसे समझने लगी थी कि किसी को भी हंसने का अधिकार नहीं है, कम से कम उसके घर के सदस्यों को तो बिल्कुल नहीं.

वह तेज-तेज कदमों से बाहर आ गयी और जीतो के गालों पर दो-तीन थप्पड़ मार दिये. फिर शीर्षासन लगाये बच्चू की ऊपर उठी टांगों को पकड़कर झटके से जमीन पर गिरा दिया, "जान तो है नहीं और करता है उलटी-सीधी हरकतें, कहीं कोई हड्डी पसली टूट गयी तो जोड़ेगा कौन! तेरा बाप!"

बच्चू जमीन पर पड़ा कराह रहा था. एकदम नीचे गिरने से उसकी पीठ जैसे दर्द से सुन्न हो गयी थी. भाई को कराहते देख जीतो अपना दर्द भूल गयी और दनादन मां की टांगों को पीटने लगी. फिर काट लिया. मां ने उसकी पीठ पर दो खुले हाथ और जमाये और उसे बांह से पकड़कर घसीटती हुई भीतर चल दी. बच्चू को भी चेतावनी दे दी, "चल तू भी अंदर."

बच्चू तब तक कुछ सामान्य हो गया था. वह भी कराहता, घसीटता हुआ धीरे-धीरे मां के पीछे-पीछे चल दिया.

"बैठो यहां!" मां ने कमरे के भीतर जाकर आदेश दिया.

वे दोनों जमीन पर बैठ गये. मां भी खामोश-सी रेत की दीवार का सहारा लेकर अधलेटी हो गयी और अपना सिर दीवार की तरफ कर लिया. उसकी आंखें डबडबा आयीं. और फिर स्वतः ही बच्चों की ओर उठ गयीं. दोनों सहमे-से सिर झुकाये बैठे थे. कभी-कभी भरी-भरी आंखों से एक-दूसरे की ओर ताक लेते थे. वातावरण में भयानक नीरवता थी. केवल कुछ मक्खियां भिनभिना कर खामोशी को भंग कर रही थीं. मां सिर घुमाकर दीवार की मिट्टी कुरेदने लगी.

"मैं बापू से कहूंगी." जीतो ने बच्चू से कहा.

"क्या?" बच्चू अपने में खोया था.

"मां ने मारा था. क्यों मारा था?"

"तू हंसी क्यों थी?"

"हंसते तो सारे लोग हैं."

मां को रुलाई आ गयी. उसे ग्लानि हो आयी. हंसना भी क्या गुनाह है? उसने बच्चों की ओर देखा और चाहा कि सीने से लगाकर उन्हें प्यार कर ले. परंतु वह ऐसा नहीं कर पायी. ऐसा सदा ही होता था. चाहकर भी वह उन्हें प्यार नहीं कर पाती थी. मन में झूठे स्वाभिमान से युक्त भय था.

मां को अपनी ओर ताकते पाकर बच्चे सहमकर चुप हो गये. वे तो मां को सोया जानकर बातें कर रहे थे. फिर वही नीरवता व्याप्त हो गयी. मां ने मुंह फिर दूसरी ओर फेर लिया.

"भूख लगी है बच्चू, तुम्हें भी लगी है न?" जीतो फुसफुसायी.

"हां." उसने पेट पर हाथ फेरा.

"मैं रसोई में रोटी देखकर आती हूं, अच्छा!"

मां का ध्यान उनकी फुसफुसाहट पर था. यह सुनकर वह फिर फट पड़ी, "कहां से आयेंगी रोटियां, क्या मैं अपने सिर की बनाऊं! आटा तो तुम्हारा बापू लाकर देता नहीं और ये मांगते हैं रोटियां. नहीं है रोटी-वोटी, दफा हो जाओ यहां से."

दोनों बच्चे खड़े होकर बाहर जाने का उपक्रम करने लगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कहां जा रहे हो?" मां दहाड़ी.
"बापू को देखने, उनका आने का टाइम हो गया है." जीतो कहकर दरवाजे से बाहर हो गयी.
"और तू कहां जा रहा हैं?"
वह चुप रहा.
"बैठ यहां, बापू कोई नेता नहीं जो स्वागत बिना नहीं आयेगा."
बच्चू बैठ गया. उस वातावरण में उसका दम घुट रहा था. जीतो बाहरी दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी. वह बार-बार ... पर देखती. कभी-कभी अनायास उसकी नजरें पास ही ... खड़े बबूल के वृक्ष की ओर उठ जातीं. लगभग दस मिनट ... उसे बापू आते दिखाई दिये. वह दौड़कर उनसे लिपट ... उसने उसे गोद में उठाकर पूछा, "तू रो क्यों रही है री?"
"मां ने मारा था, बच्चू को भी मारा था." जीतो ने कहा, उसका पारा चढ़ गया. भीतर घुसते ही उसने अपनी पत्नी से ... "क्यों मारा तुमने बच्चों को? तुझ पर भूत तो नहीं चढ़ा है?"
"भूत इन पर चढ़ा है या मुझ पर? क्यों हंसते हैं सारा दिन ये?"
"डायन! तुझे बच्चों का हंसना भी नहीं भाता." और फिर ... उस पर लातों, घूंसों की बौछार शुरू कर दी.
"बापू, मां को कुछ मत कहो, मां को छोड़ दो बापू!" बच्चू ... जीतो लगातार गिड़गिड़ाये जा रहे थे. जीतो स्वयं को अपराधी ... रही थी. क्यों बताया उसने बापू को?
वह उसे मारते हुए कहता जा रहा था, "हमेशा रोते हैं, ... हंस भी लिये तो गुनाह हो गया इसके लिए."
"रोयेंगे नहीं तो और क्या करेंगे," वह पिटती हुई बोली, ... का एक दाना भी नहीं खाया इन्होंने."
उसके हाथ रुक गये. उसने वीरो को छोड़ दिया और जीतो ... आदेश दिया, "जाओ, किशन की दूकान से एक किलो आटा ... लाओ."
जीतो चली गयी. मां उठ बैठी.
"तुम्हारी तनखा का क्या हुआ?" उसका स्वर ऐसा था जैसे ...अभी कुछ हुआ ही न हो.
"इस महीने की तनखा नहीं मिलेगी. ओवरसीयर सारे मजदूरों ... तनखा लेकर भाग गया है." उसका स्वर तटस्थ था.
दोनों खामोश बैठ गये. इतने में जीतो खाली हाथ लौट आयी, ..., "उसकी दूकान पर आटा खत्म हो गया है."
"खत्म कैसे हो गया है? कल ही तो वह एक बोरी आटा लाया ... मैंने देखा था." बच्चू बोला.
"घर के लिए पिसवाकर लाया होगा!" बापू ने बच्चू को ... दिया, जबकि वह जानता था कि बच्चू झूठ नहीं बोल रहा है, ... उसे और उधार नहीं देना चाहता.
बच्चू ने अपने बस्ते में से लोहे की स्लेट और दूसरी कक्षा की ... और गणित की पुस्तकें निकालकर जमीन पर पटकीं और ... बस्ता लिये बाहर निकल गया. बापू बीड़ी फूंकने लगा.
लगभग आधे घंटे के बाद जब बच्चू वापस आया तो उसका ... आटे से भरा हुआ था. उसने वह मां के सामने रख दिया.
"कहां से लाया आटा?" बापू ने पूछा.
"सूरज की चक्की से." उसका सपाट उत्तर था.
"पैसे कहां से लिये थे?"
"पैसों से नहीं लाया."
"तो?" बापू के तेवर बदल गये.
"मैं चक्की के पास खड़ा था. सूरज घर के भीतर रोटी खाने गया तो मैंने एक कनस्तर से थैला भर लिया."
"साला! हरामी! चोरी करके लाया है, तुझे शर्म नहीं आयी. चोरी करता है, यही सिखाते हैं तुम्हें स्कूल में?" बापू के मुक्के लगातार उसकी पीठ पर बरसने लगे. जब वह थक गया तो हांफते हुए उसने उसे छोड़ दिया. बच्चू के मुख से रुलाई नहीं फूटी. उसने बस्ता वापस कंधे पर लटका लिया.
"कहां जा रहा है?" उसके बापू ने पूछा.
"आटा वापस करने." बच्चू बोला.
"क्यों? क्या बेइज्जती करवाना चाहता है हमारी? और फिर आटा दे आयेगा तो खायेगा क्या, मेरा सिर? रख दे चुपचाप!"
उसने बस्ता उतारकर नीचे रख दिया. उसे लग रहा था कि उसका अपमान हुआ है. यदि बापू को उसकी चोरी पसंद नहीं थी तो आटा वापस क्यों नहीं करने दिया? वह सूरज से माफी मांग लेता. उसकी आंखों से गुस्सा और आंसू छलकने लगे.

जन्म : 10 मार्च, 1958. "विसंगतियों के घुटते माहौल में हर सच्चा इंसान अपनी अस्मिता की तलाश में छटपटा रहा है. इसी छटपटाहट भरे संघर्ष को वाणी देने की कोशिश अपने लेखन में करता हूं." संप्रति : शोध.

"आ बच्चू! रोटी खा ले." मां ने उसे पुकारा.
"मैं नहीं खाऊंगा, मुझे भूख नहीं है."
"भूख कैसे नहीं है, खाता है कि नहीं?" इस बार बापू ने कहा.
"मैं नहीं खाऊंगा." उसका स्वर निर्णयात्मक था.
"नहीं खायेगा?"
"नहीं खाऊंगा!"
"तू तो क्या, तेरे पुरखे भी खायेंगे." यह कहकर बापू ने तीन-चार तमाचे और जड़े, "चल चुपचाप बैठकर खा."
वह चुपचाप बैठ गया. उसके हाथ में मां ने रोटियां दे दीं, जिन पर मिर्चें कूटकर रखी हुई थीं. उसकी आंखों से पानी गिरकर लाल-लाल मिर्चों पर तिर गया. एक ग्रास उसने मुंह में डाला. उसे बहुत कड़वा लगा. बापू भीतर बीड़ी ढूंढ़ने चला गया था.
"मैं रोटी नहीं खाऊंगा." उसने रोटी वापस थूक दी.
"खायेगा कैसे नहीं! बुलाऊं तेरे बापू को?" मां ने कहा.
"बुला ले, बापू क्या करेगा मेरा!"
वह गुस्से में भरा हुआ उठा और हाथ की रोटियां दीवार पर पटककर भागता हुआ घर से बाहर निकल गया. □

● **हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तक

हमारी संस्कृति ही हमें जमीन देगी

▫ नेत्र सिंह रावत

यह जरूरी नहीं है कि रचना में कोई वास्तविक व्यक्ति आये तो वैसे ही आ जाये, जैसा वह था या है. लेकिन 'कुरु-कुरु स्वाहा' (जिसमें सभी पात्र सर्वथा कपोल-कल्पित हैं) के 'एटार्नल मिस्ट्री बोर्न इन बैंगॉल' नामक अध्याय में ऋत्विक घटक के व्यक्तित्व का खाका इतना भ्रष्ट और भ्रामक है कि पढ़ते समय गुस्सा आ गया था. उसमें रथिजित भट्टाचार्य पर यह टिप्पणी की गयी है, "विफलता गोया दादा को कुछ उतनी ही रास आती थी, जितनी भैंस को दलदल. . .पिटे हुए लोगों के लिए उनके मन में स्नेह ही स्नेह था, पहुंचे हुए लोगों के लिए अपमान ही अपमान. एक विवशता-सी थी उनमें हारने की, हारे हुओं की बिरादरी में ही रह जाने की. जहां भी भगत जुटते, चर्चा का विषय यही होता कि दादा क्या हो सकते थे, अब भी चाहें तो क्या नहीं हो सकते!" मुझे लगा था कि जोशीजी शायद कोई पुराना हिसाब चुका रहे हैं. कारण यह हो सकता है कि बंबई में जोशीजी लंबे अर्से तक रहे होंगे, हिंदी फिल्म बनाने के फेर में पड़े हुए दादा के आसपास, और जब कुछ हो न सका तो जोशीजी ने तय पाया कि दादा कुल मिलाकर बकवास हैं. एक 'आलवेज़ एप्रोचेबल जीनियस' को तमाशा समझने वाले कई लोग थे, जो जाते थे खस्ताहाल दादा के पास अपनी मोटर-गाड़ी मार्का सफलता दिखलाने के लिए, उन्हें कोंचने और जली-कटी सुनाने के लिए. जोशीजी भी उनमें से एक होंगे, इसीलिए अब कसर पूरी कर रहे हैं अपने एक ठो उपन्यास में. हालांकि दादा की एक ही लघु फिल्म 'रांदेम्' उन तमाम 'पहुंचे हुए लोगों' की सफलता को नाप सकती है, जिन्हें जोशीजी सफल मानते हैं.

'कुरु-कुरु स्वाहा' ऋत्विक घटक के अलावा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को भी समर्पित है. अतः द्विवेदीजी की याद से जुड़ा हुआ एक प्रसंग भी यहां आ रहा है: **एक पत्रिका नयी-नयी निकली थी, ठोस विचारों का ठाठ दिखाने की मुद्रा बनाये हुए, जिसे बीच से खोलकर मैं पढ़ गया एक पैरे को. लगा कि वह आचार्य द्विवेदी के किसी लेख का ही अंश हो सकता है. उस पैरे को दुबारा पढ़ने पर लगा कि नहीं; शैली तो है प्रभावित द्विवेदीजी के पांडित्य से, लेकिन एक पंक्ति भी सार्थक नहीं है. ऐसा चौपट कैसे हो गया द्विवेदीजी का लेखन? दो-तीन पृष्ठ पलटकर देखा शीर्षक की तरफ, जिसके निकट नाम छपा था एक ऐसे लेखक का, जिसे मैं कहानीकार के रूप में ही जानता था. भेद तुरंत समझ में आ गया कि बेचारा कहानीकार से विचारक बनने के फेर में पड़ गया है—एक और दुर्घटना हो रही है जैनेंद्रजी के बाद!**

'कुरु-कुरु स्वाहा' में भी प्रभाव नहीं, अनुकरण-सा है द्विवेदीजी की शैली का, लेकिन वह कहीं रेले की तरह और कहीं बूंदाबांदी की तरह आया है. विचारक बनने का चक्कर नहीं है इसमें, कोई और ही चक्कर है.

उपन्यास के उत्तरार्ध में पहुंचने तक यही लगता रहा कि जोशीजी साहित्य का सार वक्रोक्ति में देखते हैं—कहना चाहिए कि वक्रोक्तिवादी हैं. एक से एक बढ़कर चटखारेदार शब्दावली गढ़ने में ही सारी मेधा खर्च हुई जा रही है, हिंदी को एक ठो 'वार एंड पीस' देने की तन्मना रखने वाले की और वह मुग्ध हुआ जा रहा है अपनी इस मति पर—**"क्या तुम भी उनमें से हो जो हर चीज में ढोल की पोल देख चुके हैं और अब पोल का ढोल बजाये जा रहे हैं."** या **"ध्यान दें, कितना ध्यान रखा था प्रॉपर्टीज वालों ने ध्यान रखने लायक हर बात का."**

ऐसे लेसदार-लच्छेदार जुमलों की कमी नहीं है उपन्यास में, जिनका औचि... उपन्यास को 'एब्सर्ड' और 'गप्प-...स्कोप' कह देने भर से स्वीकार्य नहीं ... जाता. मैं निष्कर्ष निकालता रहा कि ... को मूल्यों पर आस्था नहीं है उसके ...कार का कोई अंत नहीं होता. उ... लिए सारी विचारधाराएं ढकोसले ... सारी पार्टियां, प्रतिबद्धता, मित्रता निर... है. लिखने का सिवाय नाम और ना... कमाने के और कोई उद्देश्य नहीं. मां-... भाई-बहन, पत्नी-प्रेमिका में ऐसा ... नहीं है कि उनसे मतलब गांठने के अला... और कोई संबंध बनाया जाये.

शेष रह जाती है आत्मरति, जो ... न्यास के प्रधान चरित्र 'जोशीजी' में ... नहीं है और जिसकी स्तुति में उपन्यास... एक और चरित्र मनोहर कोई कसर न... रहने देता. यदि शब्दचातुर्य के सहारे ... लेखक बना फिरता हो ऐसा व्यक्ति ...

...फेर अगर 244 पृष्ठ के उपन्यास का ... तो कुछ तो चाहिए पाठक को उलझा... रखने के लिए चटखारों के साथ-साथ ... 'सस्पेंस ही सही, जो उससे थोड़ा ... लगता रहे देर तक, जैसा जासूसी उपन्या... में होता है कि खजाना खोजने या ह... का रहस्य जानने का चक्कर चल रहा ... अंत तक.

'कुरु-कुरु स्वाहा' के अधिकांश ... नायिका 'पहुंचेली पतुरिया' का आ... अंत जानने की इच्छा को चकमा देने वा... 'सस्पेंस' है, जिसे पांडित्यपूर्ण, पांडित्य... चलताऊ सहित भांति-भांति की भा... शैली आगे खिसकाती रहती है. भेद ... खुलने देने की विधि का हाल यह है ... ऋत्विक घटक को तमाशा बना देने वा... उपन्यासकार किसी और संदर्भ में ... जगह यह भी कहे दे रहा है, "जीनि... मैडनेस, डिविनिटी-डिप्रेविटी इन ... डिवाइडिंग लाइनां बहुत ही थिन हो ... हैं कदी-कदी." लक्षार्थ-व्यंग्यार्थ वहां ... स्पष्ट नहीं होता, जहां फकत एक तौ... पहने पुरखों से सीखी-अधसीखी पुरो... का नमूना पेश करने के साथ ही ... खुल-खुल जाते तौलिये का चक्कर ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ता है, "कर भाई, हो जा शुरू. हुआ अथ स्वस्तिवाचन. 'ॐ स्वस्तिनो ...ताग-श्विनाभगः स्वस्ति', झटके दे-...र, 'विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तवे', झटके ...कर! यद्यपि झटकों से खिसकता जा ...था तौलिया. . . .'' 'चीप!'—मुंह से ...कला था पढ़ते समय दो-एक बार. हां, ...चेली पतुरिया के पेट पर तिल की ओर ...नोहर का आकर्षित होना यानी यह चाहना ...वह एक बच्चे की तरह उस तिल पर ...ली रखकर सो जाये, चौंका रहा था ...बार कि यह आया कहां से है और इस ...है सूक्ष्मार्थ. कहीं यह उस 'मातृग्रंथि' की ...कृति तो नहीं है, जिससे घटक पीड़ित ...ये जीवन भर!

...ज़िंदगी का बुरादा !

यह आदमी, जो मनोहर भी है और 'जोशीजी' भी है उपन्यास में, और इन ...नों को अलग करते रहने के गोरख-...धे में भोक्ता और दृष्टा की मुद्रा भी ...पाये हुए है. आखिर फंस कहां गया है? ...यद 'दुःस्वप्न नगरी' बंबई में उसने कटी-...टी, सपाट और सड़ी हुई जिंदगी इस तरह और इतनी देख ली है कि उसके और उस विद्रूप के चित्रण में ही उसने लेखकीय ...मुक्ति मान लिया है. मूल्य तपे न हों ...दे से और यदि उपन्यासकार को ...र्थों की चिंता रही हो कभी तो यही ...जाता है—**"मैं बच गया, मैं बचा रह ...या और अब मैं देख रहा हूं उन सबको ...रफ 'बोध के सर्वोच्च शिखर से' (पंत ...जी से साभार) जो चिपके हुए हैं अपनी-अपनी सड़ी हुई जिंदगी से. मैं उनके ढोल की पोल भी देख चुका हूं, जो बदलने की बात करते हैं जनचेतना या बंदूक के बल ...र समाज को. मैं बच गया हूं और आज ...रे पास एक ठो एडीटरी है सुनहरे फ्रेम ...के चश्मा सहित, गाड़ी है, टेलीविजन, फ्रिज ...आदि-आदि हैं. कांइयापन में किसी से ...पीछे नहीं हूं... .यानी यह आदमी जिंदगी ...के बुरादे को पहचानने के मुगालते में धंस ...गया है जिंदगी के बुरादे में ही.**

लेकिन उस मुकाम के नजदीक आते-आते, जहां मनोहर अपनी (?) विधवा मां को पहचान लेता है, कुछेक अंश ऐसे दिखने लगते हैं, जो सद्बुद्धि के ही अंश ...ने हैं—"इन लौंडों (मनोहर और

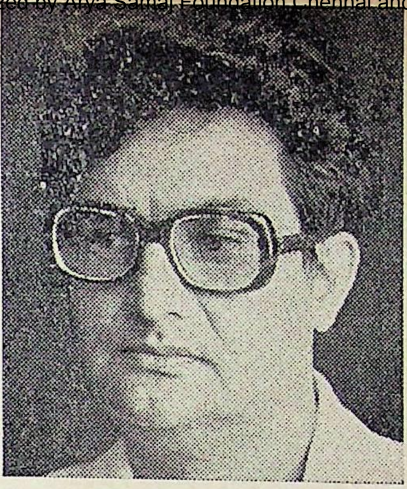

● मनोहर श्याम जोशी

जोशीजी) की सोहबत में मुझे तो जी ऐसा लगने लगा जैसे किसी ने मुझे घर जाने वाली गाड़ी से जबरदस्ती किसी छोटे-से अनजान स्टेशन पर उतार दिया है. यहां न अमराई, न कच्ची सड़क, न कोई मकान. एक दूसरे से मिलती, एक-दूसरे को काटती, चक्करदार सड़कों का एक चक्कर और उसमें एक अजीब-सा ट्रैफिक साहब! शिऊं एक गाड़ी जाती है यहां से वहां, और शिऊं दूसरी गाड़ी आ जाती है वहां से यहां. छोटी-नीची गाड़ियां. हेलमेट, गॉगल पहने सवार. न आजू देखें न बाजू. कोई रीलें-रेस सी हो रही. शिऊं-शिऊं ऐसी निकल जा गाड़ी. कद चले, कहां से चले, कोई ठिकाना नहीं. . . .'' इस शिऊं-शिऊं में बचे रहना हममें से किसके लिए कठिनतर होता नहीं जा रहा है और कितनों में बची हुई है इस शिऊं-शिऊं के जानलेवा फैलाव को पलट देने की ठनकदार इच्छा? यहां तक आते-आते यह महसूस करने लायक सूत्र भी 'फोकस' में आने लगते हैं कि संस्कृति से अलग हुई बंदूक को अनाड़ी की बंदूक समझने लायक समझ के अंश भी कहीं-कहीं छूट गये थे पीछे.

अपनी विधवा मां को पहचान लेने के बाद एक मनोहर मर जाता है और दूसरा मनोहर उस परिवेश से बाहर निकल आता है. चेतना के स्तर पर चोखा, जो उपन्यास का तब तक का परिवेश है. वहां शॉट लेने के लिए घटक भी लगभग अपने असली रूप में प्रकट हो जाता है और मूल्य-हीनता के मलबे में धंस रहे इस समाज में सात रुपया किलो चीनी के मूल्य-सूची के विरुद्ध जीवन बीमा एजेंसियों में अपना भविष्य सुरक्षित रखने वालों का क्लोज़िंग शॉट लिवाते हैं—**"एइसा करो, ओ जे सामना ऊपर में लाइफ इंश्योरेंस वालों का विज्ञापन करता है जगमग-जगमग लाल-नीला रोशनी में, तुम कट करके कैमरा इस पर ले जाओ—अच्छा अभी तोमारा दर्शक का आंख ले जाओ विज्ञापन का उस नन्हा-सा दीया और दो हाथ पर. अभी ले जाओ वह जे उद्धरण दिया है 'योग क्षेम वहाम्य हैं,' गीता में कि तोमारा लोग का योग-क्षेम रक्षा करेगा अभी शे एल. आई.सी. फिन पूरा विज्ञापन दिखाओ. . . . फिन घूमा दो कैमरा, फिरकी का माफिक. पर्दे पर अब घूमता है शे विज्ञापन, इस का दीया, इस का उद्धरण, तेज-तेज-तेज, आखिर में कुछ नहीं, बस लाल-नीला रंग का सुदर्शन चक्र जइसा. . . .''**

अंश का संपूर्ण से संबंध ?

घटक की फिल्मों के अंत में किसी न किसी रूप में एक बच्चा आता है, जो चखेगा कभी चेखव के चेरी के बगीचे के फल. 'कुरु-कुरु स्वाहा' के उस 'योग क्षेम वहाम्यहं' दृश्यक्रम को फिल्माने के बाद भी दादा कहते हैं—'आउर जोसी, अगर अभी आडियेंस उठता है आउर सीट का नीचे से बच्चा का लांगोट ढूंढ़ता है तो ओ भी ठीक!'' उपन्यास में घटक के अन्य प्रभाव भी ऐसे ही अजीबो-गरीब होकर आये हैं—पहुंचेली पतुरिया के पेट पर तिल के प्रति आकर्षण सहित—शायद इसलिए कि उपन्यासकार घटक से ज्यादा चिढ़ा हुआ है वर्तमान से या ध्वंस ही ध्वंस दीख रहा है उसे सब तरफ या शायद इसलिए कि उसका आशावाद वैसा अप-राजेय नहीं है, जैसा घटक का है. लेकिन उपन्यास में आया हुआ धिक्कार घटक के धिक्कार जैसा ही है.

पिछले डेढ़-दो साल से इस चिंता से ग्रस्त रहा हूं कि मैं रचना में अंश का संपूर्ण से क्या संबंध है? 'कुरु-कुरु स्वाहा' का वह अंश, जो उलट देता है उपन्यास के लक्षार्थ-व्यंग्यार्थ को—इस तरह नहीं आया है कि ध्वनित कर दे संपूर्ण को कई-कई स्तरों पर, लेकिन उस अंश के आते ही ऐसी दरारें पड़ जाती हैं संपूर्ण पर कि उनके भीतर से झांकने लगें बहुतेरे अंश अपनी तद्रूपता, अपनी इयत्ता का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्रह लिये कि देखो, खुल-खुल जाते तौलिये में संस्कृति के चिथड़ों का एहसास भी है, लेकिन आप (पाठक) मजा ले रहे थे घटियापन का या घटिया मान रहे थे उसे; पहुंचेली पतुरिया का "अगवाड़ा पिछवाड़ा सब. . . .अपने ही ढंग का था, यूनीक!" जैसा विवरण पढ़ते समय भी आप पर वैसी ही प्रतिक्रिया हो रही थी क्या? और यह कि उन लोगों की तरफ उपन्यासकार नहीं है, जो हर चीज में ढोल की पोल देख चुके हैं और अब पोल का ही ढोल बजाये जा रहे हैं. सक्रिय रही एक ऐसी शैली जो भेद छिपाये जा रही थी चकमा दे-देकर. उस में सधा हुआ अलगाव था और एक खास तरह की मासूमियत भी कि 'सीरिसली' मुझे कुछ नहीं कहना है, 'सीरियसली' कहने लायक है क्या, या 'सीरियसली' ही तो कह रहा हूं यह सब! लेकिन इस तरह एक उलट देने वाला आयाम आने के बावजूद ध्वनित नहीं हुआ संपूर्ण—शायद इसलिए कि कथानक का अभिप्राय एक सिरे से दूसरे सिरे तक कायदे से अमूर्तित नहीं हो पाया, या इसलिए कि चमत्कार का आग्रह हावी हो गया है अक्सर रचना की अंतरधारा पर. एक और कारण शायद यह भी है कि वैचारिकता की चाल-ढाल से मजाकिया लहजा जरा ज्यादा ही लिपट गया है और 'एब्सर्डिटी' पकी नहीं पूरी तरह से और पलायन को साथ लिये चलने का अभिप्राय बंधा नहीं कायदे से, या जरा ज्यादा ही गोपनीय हो गया, या लुप्त हो गया है बीच-बीच में.

एक ठो वार एंड पीस?

संपूर्ण को कई-कई स्तरों पर ध्वनित कर देने वाले अंश का एक उदाहरण देने के लिए उस उद्धरण का ही फिल्मांकित स्वरूप मैं नीचे दे रहा हूं, जो शायद छप जायेगा कहीं इस समीक्षा के छपने तक और जो संदर्भित उपन्यास के समर्पण-पृष्ठ के अगले पृष्ठ में है—**"पता नहीं क्यों, किंतु ऐसी प्रतीति होती है मुझे कि आधुनिक सभ्यता एक अबोध बच्ची है, जिसका चंडिका की मिथक आदिछवि से हठात् सामना हो गया है. अब समूची सभ्यता का अस्तित्व और भविष्य इसी भयंकर साक्षात् के परिणाम पर निर्भर है.** **अपनी इस बात को ब्यौरेवार समझा सकना मेरे लिए कठिन है."** घटक ने कहा है यह और उनकी फिल्म 'सुवर्ण रेखा' में एक दृश्यक्रम आता है—

सीता है—यानी उस का वर्तमान नाम सीता है—करीब आठ-दस साल की बच्ची. और एक त्यागा हुआ-सा हवाई अड्डा है —रिक्त, यहां से वहां तक. लगता है बीस-पच्चीस सालों से उस पर किसी ने हवाई जहाज नहीं चलाया. उसकी जमीन, जो फिल्म का 'टेक्सचर' भी है, बहुत सख्त है, लगता है जैसे उस पर कोलतार बिछाया गया था कभी. उस सीता के लिए सख्त धरती सिर्फ सख्त धरती नहीं है. संबंध जुड़ता है वहां जनक की बेटी सीता तक से. उसमें (हवाई अड्डे पर) आठ-दस साल की लड़की जा रही है—कोमल, शायद कहीं खेलने जा रही है. उसका नाम सीता भी है जो वैसी धरती पर चल रही है. एकाएक एक बहुरूपिया आता है वहां महाकाली का भेष बनाकर. अचानक लड़की उसे देखती है तो एक भयानक आवाज आती है संगीत के स्तर पर—ऐसी कि देखने वाला (फिल्म देखने वाला) भी दहल जाये. मैं तो समझा था कि वह लड़की बेसुध होकर गिर पड़ेगी. इतना डरावना भेष था उस बहुरूपिये का. लेकिन इससे पहले कि वह बेहोश होकर गिर पड़े, एक बूढ़ा उसके कंधे पर हाथ रखता है, विश्वास दिलाने के लिए कि वह अकेली नहीं है. फिर बहुरूपिये को डांटता है—तू जा, चल! वह बूढ़ा और लड़की आगे बढ़ते हैं और दोनों में हल्की-हल्की बातचीत सुनायी देती है—बेटी, जनक की बेटी थी सीता. ऐसा-ऐसा हुआ. . . .महा-काव्य की तरफ चले गये थे वे दोनों—. एक महान गहराई में उतर गये. वह लड़की उस सीता में समा गयी!. . .सख्त धरती पर चल रही उस कोमल काया के सामने उस बहुरूपिये का आ जाना—यह जो संयोग है—इसने पूरी फिल्म को एक स्त[र] पर नहीं, कई स्तरों पर अमूर्तित कर दिया क्योंकि तब का कलकत्ता है वह, ज[ब] शरणार्थी आये थे वहां—फिल्म के सारे चरित्र शरणार्थी हैं. आज वहां से हटाये गये—उखाड़े गये टब्लर ताले—कुंडी, झोंपड़ियां तोड़ी गयीं, मकान ढाये गये—भागे, उस सीमा को पार करके यहां आये कि जमेंगे. फिर कोई आया और कहा—उठाओ अपना बोरिया-बिस्तर, भागो! उखड़े वहां से भी—खाने का ठिकाना नहीं, रहने का ठिकाना नहीं! पता नहीं

चर्चित पुस्तक
कुरु-कुरु स्वाहा

● **मनोहरश्याम जोशी;**
प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002; मूल्य : 30 रुपये.

पढ़ते-पढ़ते

'कुरु-कुरु स्वाह' पढ़ने के बाद एक व्यंग्यकार का चुलबुला पत्र लेखक के नाम—

मनोहर भाई,

आगे चर्चित घटना या दुर्घटना [का] **आपसे किसी तरह का प्रत्य[क्ष] संबंध नहीं है. यह महज संयोग की बात है कि आपके दो एक परिचित पात्र, जो आप[की] तरह सर्वथा काल्पनिक हैं, उस संज्ञाही[न] सर्वनाम के जीवन में दो घड़ी के लिए च[ले] आये, जिसके साथ यह दुर्घटना घ[टी], नतीजतन लेखक का कापीराइट मारा ग[या] और एक एब्सर्ड सत्य उजागर हो गया. ऐसा न हुआ होता तो अच्छा होता.**

उस रोज पढ़ते-पढ़ते सर्वनामजी [ने] अपने को अचानक अंधेरे में पाया, क्योंकि बिजली गुल हो गयी थी. वैसे पावर-क[ट] से पहले भी वह उतने ही अंधेरे में थे. यह लोड शेडिंग बड़ी सुविधाजनक स्थिति पैदा कर देती है इस देश के असंख्य सर्वनामों के लिए. अपने को सांत्वना दे लेते हैं, यह सोचकर कि अंधेरा न रहा होता तो हम उजाले में होते! बड़ा कारगर है यह गर्भनिरोधक खयाल, सोचने से पहले इसका सेवन करें, काहे को किसी तरह की लज्जा या ग्लानि पैदा होगी!

तो साहब अंधेरा होते ही अपने सर्व-नामजी सड़क पर उतर आये और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...इंटलेक्चुअल अंदाज में. . .यानी ...में चूतड़ों को उठाये चलने लगे. अच्छा ...है यों अंधेरे में चलना. सुरक्षाप्रद ...आप भटकते हुए भी भटकते-से ...नहीं आते. कुछ प्रगति-व्रगति कर ...हैं जैसे तेवर, समझे न. मूर्ख साथियो, ...में ढूंढ़ रहा हूं प्रकाश को और ढूंढने ...देता है प्रकाश तुम्हें क्योंकि मैं ही हूं ...रा प्रकाशस्तंभ!

...र्वनामजी टकराये नुक्कड़ पर खड़े ...बाबू से, जो आंखों से मक्कारी और ...से बीड़ी का धुआं उगल रहा था. जब ...नामजी छोटे थे, बाबू स्कूल के सामने ...से लाठी टिकाये बंबइया-मिठाई ...करता था. पता नहीं, आपकी बंबई ...से क्या कहते हैं. और कुछ नहीं, यह ...का रंगीन पाक होता है, जो लाठी ...सिरे पर लिपटा होता है. चूंकि सर्वनाम ...की जेब में पैसे नहीं होते थे, वह अच्छे ...ों की तरह बाजारू चीज़ों से परहेज ...हुए और भविष्य में प्रकाश्य 'गर्दिश ...दिन' के लिए सामग्री जुटाते हुए ...यी नजरों से बाबू की ओर देखते ..., जिसके हाथों में आकर चीनी का ...तरह-तरह की शक्ल लेने लगता. . . ...घड़ी, हवाई जहाज वगैरह-वगैरह की ...जैसी भी फरमाइश होती बच्चों

...बू इन दिनों रंडियों की दलाली ...ता है, क्योंकि उसके ग्राहक-बच्चे ...हो गये हैं. वह शाम के नीम अंधेरे ...किसी नुक्कड़ पर देखा जा सकता है. ...के कंधे से टिकी लाठी के सिरे पर मांस का रंगीन पाक लिपटा होता है, जिसे वह अपने सधे हाथों से तरह-तरह की शक्लें देता रहता है. . . पंजाबिन, मराठिन, एंग्लो इंडियन. . जैसी फरमाइश हो ग्राहकों की.

"माल चाहिए साब?" सर्वनामजी की ओर मुखातिब होकर बाबू ने पूछा. सर्वनामजी ठहरे इंटेलेक्चुअल यानी भारतीय संदर्भ में कलमजीवी. अपने यहां इस नस्ल का हर औसत आदमी ओनामासी के साथ-साथ 'उत्तर में गिरिराज हिमालय, दक्षिण में लहराता सागर' जैसी चीज लिखकर अपने मूलतः कवि होने का प्रमाण देता है और वयस्कता प्राप्त होते ही वेश्याओं के जीवन का अध्ययन करने को तड़प उठता है. अनुकूल अवसर देखकर सर्वनामजी का हृदय इस तड़प से गुजरने को तड़प उठता. ठस्से के साथ बोले, "अपन जरा बचपन से अच्छे बच्चे हैं, बाजारू माल नहीं चलेगा, घरेलू किस्म की ऊंची चीज हो तो बताओ."

मक्कारी और बीड़ी का धुआं उगलते हुए बाबू ने एक मकान का नंबर दिया, "इदर जाव साब, नवां-नवां माल है, लाइन में नहीं उतरा पर उतर जायेंगा, जवानी का जोश है, टराई मारकर देखो."

नंबर मिलाकर पहुंचे तो सर्वनामजी ने देखा, वह अपने मकान के सामने खड़े हैं. सज-संवरकर दरवाजे पर जो घरेलू चीज खड़ी थी, वह अपनी ही बेटी तारा झावेरी थी. वह जिस व्यक्ति को ओर देखकर मुस्करा रही थी, वह अपने ही मुहल्ले का दादा टाइप छोकरा शीवा चंद्रा था.

दरवाजे पर सर्वनामजी को देख तारा मुस्करायी और भीतर ले गयी. उन्हें कुर्सी पर बिठाया और खुद सामने पलंग पर बैठ गयी. हंसते हुए पूछा, "बाबू ने भेजा है?" सर्वनामजी ने जोर का एक थप्पड़ लगाया. तारा हंसती रही. सर्वनामजी ने तारा के घुटनों पर सिर रख दिया और रोने लगे. तारा ने झोंटा पकड़कर उनका सिर उठाया और बड़े प्यार से कहा, "कमीने, तू मेरे पांवों पर माथा टेक मर जाना चाहता है ताकि मैं देवी बन जाऊं? क्या तूने मेरे साथ अनंत बलात्कार करने का वचन नहीं दिया था?"

"दिया था. मैंने अपनी विधवा मां को ऐसा वचन दिया था और तेरी मां से शादी कर उसे निभाया."

"तो फिर निभा अपने वचन." तारा ने हाथ से ताली बजायी और दादा टाइप छोकरा आकर हाथ बांध खड़ा हो गया. सर्वनामजी ने उसके हाथ पकड़कर कहा, "शीवा, मैंने इसके साथ अनंत बलात्कार करने का वचन दिया है. क्या मेरी मदद करोगे?"

शीवा ने अदब के साथ कहा, "करूंगा, अगर तुम इसका मेहनताना दो. एक स्कूटर, एक टी. वी. और एक फ्रिज."

"ज्यादा मांग रहे हो!"

"संज्ञा से सर्वनाम हो जाने का यह मुआवजा ज्यादा लग रहा है तुम्हें?"

किट्टू

...कहां रहेंगे, कहां क्या बीतेगी. कल है ...और नहीं भी है. राजनैतिक गड़बड़ ...गी—यह हटाओ, वह हटाओ, हिंदू ...अलग करो, मुसलमान को अलग करो, ..., कुचल दो! उन शरणार्थियों के ...नहीं हुआ जो उस लड़की के साथ ...—एकाएक कोई भयानक दृश्य सामने ...आया. इतनी बड़ी सामाजिक-राज- ...नैतिक-आर्थिक भयावहता का एक महा- ...में मिलाने वाले दृश्य में विस्फोट ...और सारी फिल्म ध्वनित हो गयी वहीं, ...जताते हुए भी कि जब-जब हम उखड़ेंगे तब-तब हमारी संस्कृति ही फिर हमें जमीन देगी पैर जमाने के लिए!

'कुरु-कुरु स्वाहा' इस तरह ध्वनित न हो पाने के बावजूद जाता है अतीत की तरफ, संस्कृति की तरफ संस्कृति के मलबे में धंसकर, पूर्व-पश्चिम की तरफ, बढ़ाता है अपना फलक व्यक्ति से समाज तथा देश की तरफ और ले जाता है वह सामूहिक संदर्भ के ऐसे कटाव की तरफ ही कि नीचे पाताल नजर आ जाये हठात्. होश दुरुस्त कर देने वाला चंडिका-दर्शन भी वह करवाता है. उपन्यासकार ने सामूहिक संदर्भ से न जुड़ पाने और जुड़ने की बात कहकर भी, कुछ उखाड़ न पाने की अपनी और उपन्यास के अन्य चरित्रों की परि-सीमित दशा को दर्शाया है. और ये सब अंतत वैसे ही सामने आते हैं अपने-अपने अतीत सहित, जैसे मद्रासी फिल्मों के अंत में आता है सारा कुनबा आखरी 'पोज' खिंचवाने के लिए. रही हिंदी को एक ठो 'वार एंड पीस' देने की बात तो यहां जनरल कुतुजोव उतरा नहीं है भाई, समरभूमि में. यहां 'कुरु-कुरु स्वाहा' के लायक ही हो गये हैं हम. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

दीवाली के बाद, जरा सोचें एक साथ...

रावण मरा : दशहरा मना
राम अयोध्या आये : दुनिया ने दीप जलाये
मगर बीच का वह नाजुक दिन बिसार दिया,
जब सीता ने अग्नि-परीक्षा दी! ... जबकि–

अगला अंक

सीता आज भी अग्नि-परीक्षा से ही जूझ रही है!

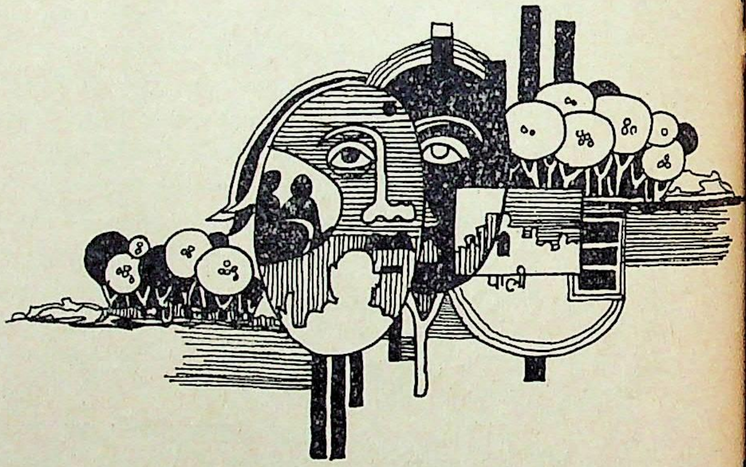

इस बार पढ़िए–पुरुष के परिप्रेक्ष्य में नारी के सामाजिक संसार को रेखांकित करती नारी-संघर्ष की जीवंत रचनाएं––

▣ मेहरुन्निसा परवेज़, राबिन शा पुष्प, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मृणाल पांडे, भगवान अटलानी, रज्जन त्रिवेदी, शैवाल (मैथिली) आलोक मेहता, हरिमोहन की कहानियां

▣ कोई तो : विष्णु प्रभाकर
प्रख्यात कथाकार के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का मार्मिक अंश

▣ खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया
अजीबो-गरीब चरित्रों की सलामती के दस्तावेजी उपन्यास की अगली किस्त.

▣ परनारी पैनी छुरी : बाला दुबे
अनजानी इतिहास कथाएं के अंतर्गत शाहजहां और उसकी बेटी जहांआरा की मिलीभगत से होती रही एय्याशियों का किस्सा.

▣ गांव की कहानी : अजित कुमार
समकालीन कथा-साहित्य में प्रस्तुत की जा रही 'भारतीय गांव' की तस्वीर का समीक्षात्मक लेखा-जोखा.

▣ कुछ लेखक मिलकर शुरू करें.... पर लेखक मिलें कैसे?.... साक्षात्कार के अंतर्गत––
कथाकार, संपादक तथा प्रकाशक डा. महीप सिंह से कन्हैयालाल नंदन और डा. हरदयाल की साहित्य, संपादक और प्रकाशन जगत के बारे में बेवाक लंबी बातचीत.

पाठकों का पन्ना, ज़रिया-नज़रिया, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं ग़ज़लें, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, पत्र-पत्रिकाएं, पढ़ते-पढ़ते आदि सभी स्थायी स्तंभों सहित––

सारिका

नवंबर : ८०, अंक : २
घर-परिवार और पुस्तकालय का स्थायी महत्त्व

केवल दो रुपये में एक पूरी किताब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की छोटी-छोटी खुशियों के लिए बचत कैसे की जाये.

केनरा बैंक की बदौलत आप जीवन में छोटी-छोटी खुशियाँ हासिल कर सकते हैं; जिनका अपना अलग महत्त्व है. केनरा बैंक में **निरन्तर जमा खाता** खोलिए तथा हर महीने एक निश्चित रक़म भरिए या एक साथ बड़ी रक़म जमा कर दीजिए. बैंक आपको जल्द ही महीने दर महीने, साल दर साल आजीवन रक़म लौटायेगा और आप निश्चिंत होकर सेवा-निवृत्त हो सकेंगे. आपकी मूल पूँजी वैसी ही रहेगी. आप जब चाहें अपनी सारी रक़म एक साथ भी निकाल सकते हैं.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं: **कामधेनु, विद्यानिधि** और **बालक्षेम.**

निरन्तर जमा खाता

केनरा बैंक

(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)

देश भर में 1,200 से भी अधिक शाखाएँ.

GROWING TO SERVE · SERVING TO GROW · CANARA BANK

maa CB 2 Hin C 80

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवैचारिकता की एक मात्र पत्रिका

'योजना'

जिसका हर अंक पठनीय और संग्रहणीय होता है

योजना आयोग की ओर से प्रकाशित सचित्र पाक्षिक पत्रिका, जिसमें आज के सामाजिक-आर्थिक मुद्दों का आकलन-विश्लेषण रहता है, सामाजिक रूढ़ियों और अंध-विश्वासों पर करारी चोट होती है और समस्याओं पर नयी दृष्टि से सोचने-विचारने की उत्प्रेरणा होती है। देश में चल रही विकास गतिविधियों की रोचक और ताजा-से-ताजा जानकारी सरल और सहज भाषा में देने वाली पत्रिका 'योजना' विद्यार्थियों, अर्थशास्त्रियों और अध्यापकों के लिए विचारों के आदान-प्रदान का एक अनूठा मंच प्रस्तुत करती है।

योजना के नियमित पाठक बनिए और वैचारिक स्तर पर देश के विकास कार्यों में शरीक होइए।

'योजना'

की चंदे की दरें

देश में :		विदेश में :	
एक प्रति	60 पैसे	एक प्रति	0.09 पौंड
वार्षिक	13 रुपये	वार्षिक	1.95 पौंड
दो वर्ष	22 रुपये	दो वर्ष	3.30 पौंड
तीन वर्ष	31 रुपये	तीन वर्ष	4.65 पौंड

विशेष छूट

- विद्यार्थियों, अध्यापकों (विद्यालय से प्रमाण-पत्र देने पर) एवं पुस्तकालयों को पत्रिकाओं के चन्दे पर 10 प्रतिशत की विशेष छूट।
- हमारी पत्रिकाओं के ग्राहकों को हमारी पाँच रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें क्रय करने पर 20 प्रतिशत की छूट। परन्तु यह छूट गांधी वाङ्मय के सैट पर उपलब्ध नहीं है।

आज ही लिखें
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

davp 80/216

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाथरूम की शान बढ़ायें उसमें पैरीवेयर लगायें

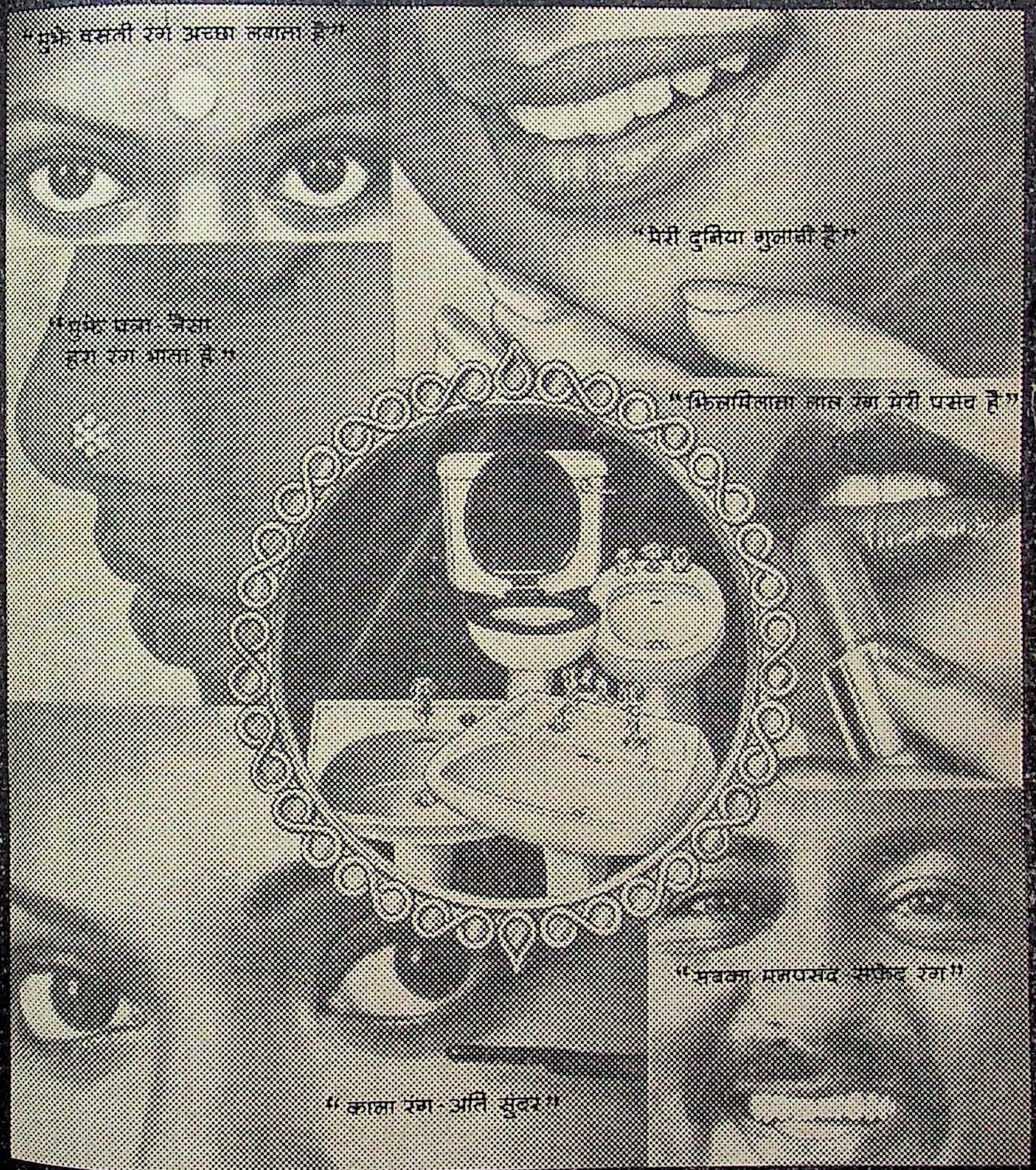

EID PW 3137 HIN

रंग चाहे झिलमिलाता लाल पसंद हो या पन्ना-जैसा हरा, आस्मानी नीला हो या चमचमाता सफेद – हर रंग में पैरीवेयर भारत और विदेशों में लाखों लोगों के मनपसंद हैं। सैनीटरीवेयर की पैरीवेयर श्रेणी अपने प्रकार की विशिष्ट श्रेणी है। शैली-साज, अति उत्कृष्ट, जीवनभर स्थायी और शान-अनुपम। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सेनिटरीवेयर का अर्थ पैरीवेयर ही है।

Parryware
VITREOUS

सेरेमिकस डिवीजन
ई.आई.डी.-पैरी (इंडिया) लि.
डेर हाउस, मद्रास ६००००१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव साक्षरों के लिए किताबें

बाइसवीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता

इस प्रतियोगिता के लिए विभिन्न भाषाओं के लेखकों की रचनाएं आमंत्रित की जाती हैं. ये हैं:—आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू. इस राष्ट्रीय प्रतियोगिता का उद्देश्य कम पढ़े लिखे लोगों के लिए मौलिक रचनाएं लिखवाकर लेखकों को प्रोत्साहन देना है. केवल ५० पृष्ठ तक की रचनाएं फुलस्केप पेपर पर डबल स्पेस में एक तरफ टाइप करके भेजी जाये.

पुरस्कार:—प्रत्येक भाषा के सर्वोत्तम लेखक को एक एक हजार रुपये के पुरस्कार दिये जायेंगे, जिनकी सं. ६५ होगी.

अर्हताएं :—केन्द्र/राज्य सरकार द्वारा प्रेषित रचनाएं जो पिछली प्रतियोगिताओं में भाग ले चुकी हैं स्वीकार नहीं की जायेंगी. प्रविष्टि पत्र तथा नियमावली के लिए निम्नलिखित पते पर लिखें साथ ही अपना पता लिखे लिफाफे पर "नव साक्षरों के लिए साहित्य के लिए वाइसवीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता (हिन्दी/अंग्रेजी में) का शीर्षक" लिखकर भेजें. लिफाफा (२४ सेंमी × १० सेंमी.) का होना चाहिए. प्रविष्टियां हाथ वदस्ती या रजिस्टर्ड डाक द्वारा प्राप्त करने की अंतिम तिथि ३०, नवम्वर, १९८० है. प्रति प्रविष्टि का शुल्क ५ रु. है जो कि रेखांकित पोस्टल आर्डर के रूप में भेजा जाए और निदेशक, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, नई दिल्ली डाकघर के नाम हो.

प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय

पश्चिमी ब्लाक सं. ८, खंड सं. ७ दूसरी मंजिल
आर.के.पुरम्, नई दिल्ली-११००२२.

डीएवीपी ८०/२१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कोलमॅन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : ...रा तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, ...बाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, ...-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू.के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar